बाल निर्माण की कहानियाँ

८





बाल-निर्माण की कहानियाँ

भाग ८

लेखिका

डॉ० आशा 'सरसिज'

प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१४ मूल्य ११.०० रुपये

विषय-सूची

क्रमांक	पृष्ठ संख्या
१. जातीय गौरव	३
२. शक्ति की पहिचान	८
३. होनहार बालक	१२
४. कुबड़ी बुआ	१७
५. मोटा गुल्लू	२१
६. व्यक्तित्व की परख	२४
७. बीमारियों की जड़	२८
८. समाज के शत्रु	३४
९. चींटी और मधुमक्खी	३७
१०. यात्रा	४२
११. स्वर्ग का सुख	४६
१२. भाइयों का स्नेह	५२
१३. सफल और लोकप्रिय शासक	५६
१४. संकल्प	५९

जातीय गौरव

एक सुंदर झील के किनारे तोतों के कुछ परिवार उड़ते हुए आए। वे सभी देशाटन पर निकले थे। झील का रमणीक स्थान उन्हें बहुत अच्छा लगा। चारों ओर पहाड़ियाँ, फलों से लदे हरे-हरे वृक्ष थे और स्वच्छ जल था। रहने की सारी सुविधाएँ वहाँ थीं। तोते उड़ते-उड़ते बहुत थक भी चुके थे। अतएव उन्होंने विचार किया कि कुछ दिन इसी घाटी में रहकर विश्राम किया जाए।

तोतों को सुखपूर्वक वहाँ रहते हुए अभी दो-चार दिन ही बीते होंगे कि कौवों का एक बहुत बड़ा झुंड भी वहाँ उड़ता हुआ आ गया। कौवों को भी झील के किनारे का वह स्थान बहुत अच्छा लगा। उन्होंने मिलकर छलपूर्वक तोतों को बंदी बना लिया। यों भी तोते संख्या में थोड़े से ही थे अतएव वे जल्दी ही हार गए थे। उस स्थान पर कौवों ने अपना अधिकार जमा लिया।

कौवे अपनी कठोर आवाज में सारे दिन वहाँ काँव-काँव करते। तोतों को उनकी आवाज से कान बंद कर लेने पड़ते। कौवे इतनी गंदी चीजें खाते, इतने गंदे ढंग से खाते कि देखकर ही तोतों का जी मिचला उठता। वे सारे दिन दूसरों की बुराई करते, जिसे सुनकर तोतों को बड़ा बुरा लगता। वे अपना बहुत-सा समय बेकार ही गँवा देते, काम करने में आलस्य करते। तोतों को उनके साथ एक-एक दिन काटना मुश्किल पड़ रहा था।

तोते सोच रहे थे कि कौवे जल्दी ही उन्हें बंधन से मुक्त कर देंगे। पर जब चार-पाँच दिन तक भी कौवों ने उन्हें नहीं छोड़ा तो वे सोच में पड़ गए। आखिर ये चाहते क्या हैं ? हमें क्यों नहीं छोड़ देते ? आपस में वे एक-दूसरे से कहने लगे।

एक वृद्ध तोता बोला—'हो सकता है कि वे यह सोच रहे हों कि हम उनसे लड़ेंगे और इस स्थान पर अपना अधिकार जमा लेंगे।'

तब सारे तोतों ने विचार किया कि वे कौवों से यह बात कह दे कि उन्हें छोड़ दिया जाए। वे इस स्थान से चले जाएँगे जिससे कि कौवे यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहें।

तोतों के नेता ने कौवों से निवेदन किया—'भाइयो ! आप सभी यहाँ आराम से रहिए, उसमें हम बाधक न बनेंगे। कृपया हमें छोड़ दीजिए। हम सब तोते यहाँ से उड़कर और किसी स्थान पर चले जाएँगे।'

यह सुनकर एक वृद्ध कौवा बड़े ही जोर से काँव-काँव करके बोला—"तोतो ! इस स्थान पर तो अब हमारा अधिकार हो ही चुका है, पर हम तुम्हें भी यों ही न छोड़ेंगे। हम अपनी संस्कृति का प्रसार करने निकले हैं। अधिक से अधिक पक्षियों में हम काक-संस्कृति का प्रचार चाहते हैं। जब तुम हमारी बोली ठीक से सीख जाओगे, हमारा जैसा ही रहन-सहन और हमारे जैसे ही गुण अपना लोगे तब हम तुम्हें छोड़ देंगे।"

कौवे की बात सुनकर तोते तो आश्चर्य से ठगे ही रह गए। एक विद्वान तोता तुरंत बोला—'भला यह कैसे संभव है ? आप में और हम में बहुत अंतर है। हमारी और तुम्हारी जातियाँ ही भिन्न-भिन्न हैं। आपकी भाषा भला हम सीख भी कैसे सकते हैं ?'

'बकवास मत करो, चुप रहो। प्रारंभ में सभी पक्षी ऐसा ही कहा करते हैं, पर बार-बार प्रयास करने से, निरंतर अभ्यास करने से सब संभव हो जाता है।' कौवे ने कर्कश स्वर में कहा और उड़ गया।

दूसरे ही दिन से कौवों ने प्रशिक्षण देना प्रारंभ कर दिया। तोते यदि उनकी तरह कर्कश स्वर में न बोलते, वैसा ही रहन-सहन न अपनाते तो कौवे उन्हें चोंचों से मारते। कभी तो तोते खून से लथपथ भी हो जाते। वे मन ही मन सोचते—'हे भगवान ! कहाँ आ फँसे हैं हम ? पर वे लाचार थे। उन्होंने निकलने का कोई उपाय ही न सूझता था। कौवे उन पर कड़ी निगरानी रख रहे थे, जिससे वे छूटकर न भाग सकें।

कुछ ही दिनों में तोते कौवों का आचार-व्यवहार, सीखने लगे। छोटे बच्चे तो कौवों की ही तरह कर्कश स्वर में बोलना, वैसे ही खाना, बुराई करना आदि सभी कुछ जल्दी-जल्दी सीख रहे थे। यह देखकर वृद्ध तोता बड़ा ही दुःखी हुआ। वह कहने लगा—'अरे ! धिक्कार है हमें जो दूसरी भाषा, दूसरी संस्कृति अपना रहे हैं। हाय ! हमारे ये छोटे-छोटे बच्चे परायी भाषा में बोलेंगे तो क्या ज्ञान प्राप्त कर पाएँगे ? बच्चों का सर्वांगीण विकास तो तभी संभव है जब उन्हें मातृभाषा में सिखाया जाए। दूसरों की भाषा में सीखकर क्या कहीं प्रतिभा विकसित हुआ करती है ? मातृभाषा का अपमान करना माँ का अपमान करने से भी अधिक बुरा है।'

उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए विद्वान तोता बोला—'और क्या दूसरों की संस्कृति को अपनाने से कहीं कल्याण हुआ करता है ? धिक्कार है इन अभागे मूर्खों को जो अपनी मातृभाषा का गौरव भूलकर औरों की भाषा की नकल ही करते हैं और खुश होते हैं। धिक्कार है उन्हें जो अपनी उत्कृष्ट संस्कृति की गरिमा को भूलकर औरों की संस्कृति का, अवनति के मार्ग पर घसीटने वाली उनकी सभ्यता का अनुकरण करते हैं।'

सभी तोते विचार करने लगे कि हम तो बड़े हैं, कौवों की शिक्षाएँ बाद में भुला भी सकते हैं, पर छोटे-छोटे बच्चों का क्या होगा ? इस नई आयु में तो कुछ वे सीख लेंगे तो यह सदैव ही उनके साथ रहेगा। बच्चों का मन जो कोमल हरी डाल के समान होता है, उसे एक बार जिधर मोड़ दिया जाए उधर ही मुड़ जाती है।

एक तोता कहने लगा—'यदि ये बच्चे गलत सीख लेंगे तो इनकी आने वाली पीढ़ियाँ भी फिर कौवों की ही तरह व्यवहार करेंगी। हाय ! यों तो हमारी जाति का एक बहुत बड़ा भाग ही धीरे-धीरे काक-संस्कृति में दीक्षित होता चला जाएगा। ऐसे तो हमारी जाति का बड़ा ही अपकार होगा। अरे ! ऐसे जीवन से तो मर जाना ही अधिक अच्छा है।'

बस फिर क्या था। दूसरे ही दिन से तोतों ने सत्याग्रह प्रारंभ कर दिया। बच्चे, बूढ़े-जवान सभी तोतों ने कह दिया—'अब हम आपकी शिक्षायें नहीं लेंगे।'

कौवों ने उन्हें बहुतेरा समझाया, मार डालने की धमकियाँ भी दीं पर तोतों ने एक न सुनी। उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया। कौवों को उन्होंने साफ जवाब दे दिया—आप हमें क्या मारेंगे, हम स्वयं ही अपने प्राण छोड़ देंगे। जैसा जीवन आजकल हम जी रहे हैं वह मृतकों से भी बुरा है।'

तीन-चार दिन तक तोतों ने न कुछ खाया, न पिया। वे अब अचेत-से होने लगे। कौवे दिन में एक बार उनके पास आते और हठ छोड़ देने का आग्रह करते, पर तोते उनकी ओर आँख उठाकर भी न देखते। वे अभी भी अपने निश्चय पर दृढ़ थे। 'अब तो हम मरने वाले ही हैं। हमारा अंत समय आने ही वाला है।' यह सोच-कर वे मन ही मन भगवान को याद करते रहते थे।

पाँचवें दिन संयोग से एक गिलहरी कहीं से घूमती-घामती वहाँ आ गई। जब उसने बहुत-से तोतों को लताओं की रस्सी से बँधे देखा तो वह अपना आश्चर्य न रोक सकी। गिलहरी चंचल तो थी ही फुर्र से उनके पास दौड़ी गई।

'अरे भाइयो ! यह क्या हुआ ? किसने तुम्हारी यह स्थिति कर दी है ?' वह तोतों की दयनीय दशा देखकर बड़े ही चिंता भरे स्वर में बोली।

गिलहरी की बात सुनकर तोतों ने बड़ी मुश्किल से अपनी आँखें खोलीं। उन्होंने कुछ कहने के लिए अपनी चोंच खोली, पर प्यास के कारण उनकी जीभ मुँह में ही चिपक कर रह गई और उनके मुँह से आवाज न निकली।

'ओह ! रुको।' गिलहरी बोली। उसने अपने पैने दाँतों से तोतों के बंधन काट दिए। फिर वह दौड़कर गई और अपने मुँह में पानी भर लाई। एक तोते की चोंच में उसने पानी डाला, पानी पीकर उसे कुछ शक्ति मिली। उसने कोशिश की और उड़ चला पानी लाने के

लिए। पानी लाकर उसने दूसरे तोतों के मुँह में भी डाला। इस प्रकार बारी-बारी से तोते पानी पीकर उड़ते और प्यासे तोतों के मुँह में पानी डालते।

जब सारे तोते उड़ने योग्य स्थिति में आ गए तो वृद्ध तोता बोला—'गिलहरी बहिन ! हम तुम्हारे जितने कृतज्ञ हों उतना ही कम है। तुमसे हम बहुत कुछ कहना चाहते हैं, पर डर है कि वे सभी दुष्ट कौवे कहीं फिर न आ जाएँ और तुम्हारा सारा परिश्रम ही व्यर्थ में चला जाए।'

गिलहरी कहने लगी—'पहाड़ी के पीछे रसीले आडुओं का एक बड़ा पेड़ है। उत्तर दिशा की ओर उड़ने से तुम्हें वह पेड़ मिल जाएगा। तुम सब वहीं उड़ जाओ। मैं भी वहीं पहुँच रही हूँ, तभी तुमसे बातें करूँगी।'

तोतों ने गिलहरी को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया और वहाँ से उड़ चले। जल्दी ही वे आडुओं के पेड़ के पास पहुँच गए। वहाँ पर स्वादिष्ट आड़ू खाकर उन्होंने अपनी भूख मिटाई। थोड़ी देर बाद गिलहरी भी वहाँ पहुँच गई। उन्होंने उस झील के पास आने से लेकर अब तक की सारी बातें विस्तार से बताईं।

गिलहरी कहने लगी—'ओह ! तब तो तुम्हारा अब यहाँ पर अधिक देर तक ठहरे रहना उचित नहीं है। जल्दी से तुम्हें ढूँढ़ते हुए वे सारे दुष्ट कौवे यहाँ पर आ ही जाएँगे। तुम सब तुरंत ही यहाँ से उड़ जाओ।'

तौतों ने गिलहरी का बहुत-बहुत आभार प्रकट किया। फिर भावभरे हृदय से उससे विदा लेकर वे लंबी उड़ान के लिए उड़ चले।



शक्ति की पहिचान

एक बार अभयारण्य में बहुत जोरों का तूफान आया। संयोग की बात थी कि उसी दिन सारे पक्षियों ने मिलकर घूमने का कार्य-क्रम बनाया था। वे सब सुबह-सुबह वहाँ से उड़ गए थे। शाम को जब वे वापिस लौटे तो वहाँ का दृश्य देखकर उनका जी धक् से रह गया। सारे के सारे पेड़ धरती पर उखड़े पड़े थे। तूफान ने उन्हें जड़ सहित उखाड़कर फेंक दिया था। बस एकमात्र वट वृक्ष ही चोटें सहकर खड़े थे।

पक्षियों ने दुःखी मन से वृक्षों की संवदेना में शोक सभा की। आखिर उन्हीं की गोद में वे पले, बढ़े और रह रहे थे। जीवन के न जाने कितने सुनहरे दिन उन्होंने उन्हीं वृक्षों की गोद में बिताए थे। साथ ही उनके घोंसले, अण्डे-बच्चे भी वृक्षों के साथ नष्ट हो गए थे। सारे पक्षी बड़े उदास थे, उन्हें लग रहा था जैसे उनके सभी सगे-संबंधी मर गए हों। उस दिन न किसी ने खाना खाया और न पानी पिया।

कुछ दिन इसी प्रकार शोक की स्थिति में बीते। तब एक वृद्ध नीलकंठ से न रहा गया। उसने सभी पक्षियों को इकट्ठा किया और कहने लगा—'बच्चो ! तुम ऐसे कब तक शोक मनाओगे ? इस तरह शोक मनाने से क्या लाभ ? मरने वालों के साथ मरा तो नहीं जाता, पर हाँ ! यदि उनके प्रति हम सच्चा प्रेम, सच्ची श्रद्धा रखते हैं तो कुछ ऐसा करें कि उनकी स्मृति दुनियाँ में रहे।'

सभी पक्षियों को नीलकंठ दादा की बात बिलकुल सही ही लग रही थी। 'दादाजी ! आप ही बताइए कि हम सब क्या करें ?' वे एक स्वर में पूछने लगे।

'यदि तुमने वृक्षों को सच्चे मन से प्यार किया है तो उन्हें फिर से लगाओ।' वह कहने लगा।

'दादाजी ! वह सब कैसे संभव हो सकता है ? हम नन्हें-नन्हें पक्षी हैं, हमारी इतनी सामर्थ्य भी कहाँ है ?' सुखिया कोयल मुँह फुलाकर बोली।

'सुखिया ! इस दुनियाँ में कुछ भी असंभव नहीं है। जो काम मन लगाकर किया जाता है, वही संभव हो जाता है। जो काम बिना मन के और आलस से करते हैं तो वही असंभव हो जाता है।' नीलकंठ ने उत्तर दिया।

'दादाजी ! कैसे करें यह काम। कृपया साफ-साफ समझाएँ।' सारे पक्षी पूछने लगे।

नीलकंठ बोला—'बच्चो ! तुम शरीर से छोटे हो तो क्या ? बहुत कुछ कर सकते हो। तुम सभी अपनी-अपनी चोंच में एक-एक पेड़ या पौधे का बीज ले आओ। थोड़ी-थोड़ी दूर पर अपने पंजों से जरा-सी जमीन खोदकर उसे दबा दो। जल्दी ही वर्षा आने वाली है, कुछ ही दिनों में तुम देखोगे कि तुम्हारे चारों ओर ढेर सारे नन्हें-नन्हें पौधे उग आए हैं।'

'दादाजी ! बात तो आपने बहुत अच्छी बताई है। हम ऐसा ही करेंगे। यही वृक्षों के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि ही होगी।' सभी पक्षियों ने मिलकर कहा और अपने-अपने भोजन की खोज में उड़ चले।

उस दिन से सभी पक्षियों ने अभियान शुरू कर दिया। शाम को जब वे लौटते थे तो उनके पंजों में किसी न किसी वृक्ष का बीज लगा रहता था। उस बीज को या तो गड्ढे में डाल देते या फिर अपने पंजे से थोड़ी-सी जमीन खोदकर उसमें दबा देते थे। कोई-कोई पक्षी तो छोटा-सा पौधा ही जड़ सहित ही उखाड़ लाता था। कई पक्षी तपती दोपहरी में भी अपनी चोंच में पानी भरकर लाते और लगाए गए वृक्षों—बीजों में डालते।

पक्षियों का यह कठोर परिश्रम देखकर इंद्र भगवान का दिल भी पसीज उठा। जो स्वयं अपनी सहायता करता है भगवान भी उसी की सहायता करते हैं, उसी को आशीर्वाद देते हैं। जल्दी ही आसमान

में काले-काले बादल छाने लगे। वर्षा की झड़ी लग गई। सभी पक्षी प्रसन्न हो उठे। मोर केंआ-केंआ के स्वर में राग अलाप कर नाच उठे।

आठ-दस दिन बाद बीजों में से अंकुर निकलने लगे। उन्हें देखकर पक्षी झूम उठे। प्रसन्नता की अधिकता से वे एक-दूसरे की चोंच से चोंच मिलाकर नाचने लगे। आखिर उनका परिश्रम जो सफल रहा था। नियमित और व्यवस्थित रूप से परिश्रम करने से बड़ा उद्देश्य भी पूरा हो जाता है।

कुछ ही दिनों में चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखलाई देने लगी। वह स्थान अब पहले से भी अधिक सुंदर लगने लगा था। सभी पक्षियों ने उसका नवीन नामकरण किया था—'शीतलकुंज।' सभी पक्षी इसके लिए नीलकंठ दादा के आभारी थे। उन्हीं की प्रेरणा से नव-निर्माण हुआ था।

एक दिन साँझ के झुटपुटे में सभी पक्षी आराम से घेरा बना कर आ बैठे थे। वे सभी खा-पीकर निश्चिंत और ठंडी-ठंडी हवा में आपस में बतिया रहे थे। चारों ओर फैली हरियाली को देखकर वे फूले न समा रहे थे। सुखिया कोयल कहने लगी—'दादाजी ! हम सभी तो हिम्मत हारकर ही बैठ गए थे, आपकी प्रेरणा से ही यह कुंज बसाया जा सका है।'

बुड्ढे नीलकंठ को सहसा ही उस दिन बात याद आ गई जब सुखिया कोयल ने तुनककर कहा था—'हम तो नन्हें-नन्हें पक्षी हैं, हमारी इतनी सामर्थ्य भी कहाँ है ?' नीलकंठ दादा मुस्कराते हुए बोले—'बेटी ! दुःख-मुसीबत में हिम्मत हारकर बैठने से हम रही सही शक्ति भी खो बैठते हैं। जो साधारण व्यक्ति होते हैं वे आपत्ति आने पर हिम्मत हारकर बैठ जाते हैं। परन्तु महान् व्यक्ति संकट में और अधिक धैर्य तथा साहस से काम करके चमक उठते हैं। धैर्य और अध्यवसाय—ये बड़े से बड़े संकट में भी विजय की अमोघ कुंजियाँ हैं।

फिर सभी पक्षियों की ओर देखते हुए नीलकंठ दादा समझाने लगे—'बच्चो ! हमारे अंदर बहुत क्षमताएँ हैं, शक्ति का खजाना है। पर खेद है कि हम पहिचान नहीं पाते। अधिकांश प्राणी रोते-कलपते, भटकते रहते हैं, जीवन को बरबाद करते रहते हैं। जो अपने को पहिचान लेते हैं, अपनी आंतरिक शक्तियों को जानकर उनका सदुपयोग कर लेते हैं, वही अपने जीवन को ऊँचा उठा लेते हैं, औरों के लिए भी खुशहाली लाते हैं।'

'दादाजी ! आप ठीक कहते हैं।' सभी पक्षी जो अब तक एक साथ बड़े ध्यान से नीलकंठ दादा की बात सुन रहे थे, गर्दन हिला-हिलाकर बोले।

'इतना बड़ा 'शीतलकुंज' बनाने की बात तो हम कभी सपने में भी नहीं सोच सकते थे।' हरियल तोता कहने लगा।

'दादाजी ! हम आपके बड़े ही कृतज्ञ हैं कि आपने हमें जीवन का बहुत बड़ा ज्ञान दिया है। अपने आपको पहिचानने का, अपनी शक्तियों को जानकर आगे बढ़ने का ज्ञान्। हम आपका यह संदेश लेकर दूर-दूर तक जाएँगे और दीन-हीन प्राणियों में नई चेतना, नई जागृति का मंत्र फूकेंगे।' सभी पक्षी बोले।

इस प्यार से नीलकंठ दादा की आँखों में आँसू चमक आए। वे रुँधे हुए गले से बोले—'बच्चो ! आज मैं धन्य हो उठा हूँ। मेरे प्रति यही तुम्हारी सच्ची श्रद्धा होगी। तुम अपने कार्य में सफल होओ, ईश्वर का आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहे।'

नीलकंठ दादा के उपदेश से शीतलकुंज के सब पक्षियों ने न केवल अपना ही नया निर्माण किया, अपितु दीन-दुःखी अन्य अनेक पक्षियों को भी नये जीवन का जागृति-संदेश दिया। सच है कि महान् व्यक्ति की संगति से साधारण जन-जीवन भी बदल जाता है और असाधारण कार्य सहज भाव से कर लेता है।



होनहार बालक

सौरभ और विक्रम दोनों के घर आसपास थे। वे एक ही स्कूल में एक ही कक्षा में पढ़ते थे। वे साथ-साथ स्कूल जाते थे और साथ ही साथ अपने-अपने घर लौटते थे। उनके पिताजी भी एक आफिस में काम करते थे।

सौरभ और विक्रम दोनों को ही प्रतिदिन जेब खर्च के लिए पैसे मिलते थे। विक्रम अपने सारे पैसे स्कूल में ही खर्च कर डालता। कभी चाट खाता तो कभी चिंगम। उसके अभिभावक कभी उससे यह तक न पूछते कि वह पैसा किस चीज में खर्च करता है ? धीरे-धीरे विक्रम बड़ा चटोरा बन गया।

विक्रम देखता है कि सौरभ स्कूल में चीजें खरीदकर बहुत कम खाता है। वह अपने घर से ही खाना या नाश्ता ले आता और वही खा लेता। विक्रम उससे प्रायः कहता—'चलो भी ! हम सभी दोस्त मिलकर चाट खाएँगे परंतु सौरभ बड़ी विनम्रता से मना कर देता। वह बहुत कम, कभी-कभी ही उनके साथ जाता। यह देखकर विक्रम को बड़ा गुस्सा आता। उसने अपने मित्रों में यह बात फैला दी कि सौरभ कंजूस है, मक्खीचूस है। अब तो उठते-बैठते सारे साथी उसे चिढ़ाया करते—'कंजूस—मक्खीचूस।'

प्रारंभ में तो सौरभ इतने सारे बच्चों के यों चिढ़ाने से रुँआसा हो गया। फिर उसने सोचा कि यदि मैं इनके सामने रो गया या चिढ़ने लगा तो ये सभी मुझे और चिढ़ाएँगे।

बच्चे जब चिढ़ा-चिढ़ाकर थक गए और सौरभ पर कोई भी असर न पड़ा तो आखिर वे ऊब गए। एक दिन विनय से न रहा गया और वह पूछ ही बैठा—'सौरभ ! तुम्हें जेबखर्च के लिए रोज पैसे तो मिलते होंगे न ?'

'हाँ ! मिलते तो हैं।' सौरभ ने उत्तर दिया।

'तो फिर तुम इतने कंजूस क्यों हो ? क्यों उन्हें खर्च नहीं करते ?' विनय ने पूछा।

'भाई ! तुम मुझे कंजूस तो नहीं, पर हाँ मितव्ययी जरूर कह सकते हो।' सौरभ बोला।

'हूँ ! कंजूस और मितव्ययिता में क्या अंतर है ?' विनय फिर कहने लगा।

'भाई ! अंतर है, बहुत ही अंतर है। सौरभ समझाने लगा— 'मितव्ययिता का अर्थ कंजूसी बिल्कुल नहीं है। मितव्ययिता तो फिजूलखर्ची और कंजूसी के बीच की वस्तु है। फिजूलखर्चा बिलकुल भी नहीं करें—यह बात तो गरीब और अमीर सभी के लिए समान रूप से आवश्यक है।'

'ओह ! उपदेशक महोदय हम तुम्हारी बात समझ नहीं पाए।' विक्रांत कहने लगा।

सौरभ ने फिर समझाया—'देखो भाई ! कंजूस तो वह होता है जो जरूरत होने पर भी पैसा खर्च नहीं करता। ऐसा पैसा व्यर्थ है, मिट्टी है जो न अपने काम में आए और न दूसरों के। पर मितव्ययी वह होता है जो यह सोच-समझकर पैसा खर्च करता है कि कहाँ व्यय करना चाहिए, कहाँ नहीं और फिजलूखर्ची वह होता है जो बिना सोचे-समझे हर कहीं धन व्यय कर देता है।'

'ओह ! छोड़ो यह पचड़ा। यह बताओ कि मितव्ययी बनने से लाभ भी क्या ?' पंकज ने पूछा।

'ऐसा न कहो।' सौरभ बोला। अपव्यय अंत में बड़ा ही दु:ख देता है। चाहे वह धन का हो, समय का हो या फिर शारीरिक और मानसिक शक्तियों का हो। शारीरिक, मानसिक और आर्थिक संयम बरतकर ही सदैव सुखी, संतुष्ट और स्वाभिमानी जीवन जिया जा सकता है।

'ओह ! किसने सिखाया है तुम्हें यह सब ? विनय तुरंत ही पूछने लगा।

'मेरे अपने पिताजी और माताजी ने।' सौरभ ने गर्व से सिर उठाकर कहा।

विक्रम ने पूछा—'अच्छा जो पैसे तुम्हें मिलते हैं, उनका तुम करते क्या हो ?'

'मैं उन्हें गुल्लक में डाल देता हूँ। जब कोई आवश्यकता होती है तो कोई चीज ले लेता हूँ।' सौरभ बोला।

'हूँ।' यों जोड़ने के लिए, मितव्ययी बनने के लिए पूरा जीवन पड़ा है।' विक्रम ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा।

'पर तुम भूल जाते हो कि बचपन में हम जैसी आदतें डाल लेते हैं वही बड़े होकर भी बनी रहती है।' सौरभ कहने लगा।

'तो भाई ! हमारी आदतें गंदी ही सही।' विक्रांत थोड़ा-सा चिढ़कर बोला।

सभी बच्चे सौरभ को उलाहने देते चले गए। 'यह सौरभ का बच्चा अपने आपको न जाने क्या समझता है। पढ़ने में जरा कुछ होशियार है, इसलिए बड़े उपदेश झाड़ता रहता है। मास्टर साहब भी इसे प्यार करते हैं, इसलिए हम पर रौब गाँठता है।' वे सब आपस में कह रहे थे।

उस दिन के बाद से अधिकांश बच्चों ने सौरभ से बोलना ही छोड़ दिया था। विक्रम और उसके साथी सभी बच्चों को सौरभ के विरुद्ध भड़काते रहते थे। एक-दो बच्चे ही ऐसे थे जो उनकी बातों में न आते थे। वे सौरभ के पास बैठते। विक्रम और उसके साथी उन बच्चों को भी तंग किया करते थे।

इसके कुछ ही दिनों बाद की बात है। अचानक ही अपने देश का पड़ोसी देश के साथ युद्ध छिड़ गया। देश की रक्षा के लिए बच्चे-बुड्ढे सभी में उत्साह की लहर दौड़ गई। रक्षाकोष के लिए स्थान-स्थान पर धन एकत्रित किया जाने लगा।

सौरभ की गुल्लक में कई वर्षों से जेबखर्च के लिए दिए जाने वाले पैसे इकट्ठे हो रहे थे। उसने मन में सोचा—'इस पवित्र कार्य में मैं ही क्यों पीछे रहूँ ?' उसने अपनी सारी ही एकत्रित धनराशि

रक्षाकोष में देने का विचार किया। उसके पास अब तक कुल ४७० रुपये जमा हो गए थे। सौरभ ने अपने पिताजी से जब यह बात कही तो वे बड़े ही प्रसन्न हुए। 'मातृभूमि की रक्षा करना हमारा पहला कर्त्तव्य है।' उन्होंने सौरभ को समझाया। सौरभ को प्रोत्साहन देने के लिए पिताजी ने ३१ रुपये अपनी जेब से और मिला दिए। सौरभ ने उसी दिन ५०१ रुपये का ड्राफ्ट प्रधानमंत्री के पास रक्षाकोष में भेज दिया। साथ में उसने एक पत्र भी रखा था, जिसमें उसने लिखा था कि आप चिंता मत करिये, देश पर संकट आने पर हम नन्हें-नन्हें बच्चे भी एकजुट होकर काम करेंगे और अपना सब कुछ ही मातृभूमि पर न्यौछावर कर देंगे।

लगभग एक सप्ताह बाद ही प्रमुख समाचार-पत्रों में सौरभ का फोटो और पत्र छपा था। साथ ही यह समाचार विस्तार से दिया गया था कि किस प्रकार एक दस वर्ष के छटी कक्षा के छात्र ने अपने वर्षों के जेबखर्च के बचाए हुए पैसे अपने देश की रक्षा हेतु रक्षाकोष में दिए हैं। बच्चे के त्याग भरे इस कार्य से बड़े-बड़ों को भी प्रेरणा मिली।

सौरभ के प्रधान अध्यापक ने जब यह समाचार पढ़ा तो वे गद्‌गद्‌ हो उठे। सौरभ ने न केवल अपना अपितु उनके स्कूल का नाम भी उज्ज्वल किया था। ऐसे बच्चे ही तो समाज और देश के गौरव हुआ करते हैं।' उन्होंने मन ही मन सोचा। फिर उन्होंने सौरभ को सम्मानित करने का विचार किया।

प्रधान अध्यापक ने स्कूल में बच्चों की एक सभा की। उन्होंने सभी बच्चों के सामने सौरभ की बड़ी प्रशंसा की, उसे बहुत शाबासी दी और प्रोत्साहन के लिए एक सुंदर पैन और कुछ अच्छी पुस्तकें भी उपहार में दीं। उस दिन स्कूल भर के सारे बच्चे सौरभ की ही बात कर रहे थे।

विक्रम और उसके साथी आज मन ही मन बड़े लज्जित थे। वे सौरभ के पास आए और बोले—'भाई ! तुमने तो आज हमारी आँखें खोल दीं। हमारे ही विचार खराब थे जो तुम्हें इतना तंग किया और

तुम्हारी बुराई भी की। अब हम कभी ऐसा काम नहीं करेंगे। इस बार माफ कर दो न हमें। अब हम भी तुम्हारे जैसा ही महान् बनेंगे।

'छिः ! कैसी बातें करते हो तुम सब। मैं तो पहले भी तुम्हें प्यार करता था और हमेशा करता रहूँगा।' यह कहते हुए सौरभ ने अध्यापकों से मिले हुए टाफियों के डिब्बे से एक-एक टाफी निकालकर सभी बच्चों के मुँह में रखने लगा।



कूबड़ी बुआ

नैमिषारण्य में रानी नाम की एक साही रहा करती थी। वह आयु में छोटी होते हुए भी बड़ी बुद्धिमान थी। उसकी बुद्धिमत्ता से अनेक बार साहियों के परिवार की रक्षा हुई थी अतएव सभी उसका बड़ा सम्मान करते थे।

कुछ ही ऐसे व्यक्ति होते हैं जो सम्मान और ऊँचा पद पाकर भी अभिमान नहीं करते। सामान्य व्यक्ति तो थोड़ा-सा सम्मान पाकर ही घमंड से भर उठते हैं। रानी के साथ भी यही हुआ। वह सोचने लगी कि मेरा जैसा बुद्धिमान पूरे नैमिषारण्य में कोई नहीं है। इस अहंकार ने रानी के व्यवहार पर भी प्रभाव डाला। पहले वह बड़ों का आदर करती थी, बराबर वालों से विनम्रतापूर्वक बातें करती थी पर अब तो उसके पैर ही जमीन पर न पड़ते थे। अब वह बड़ों को देखकर भी अनदेखा कर देती, एकदम मुँह के सामने पड़ जाने पर ही नमस्ते करती। बड़ों के प्रति वैसी श्रद्धा-सम्मान भी अब उसके मन में नहीं था। बराबर वालों से तो उसका व्यवहार बड़ा ही रूखा हो गया था। अपने सामने उनको वह बड़ा ही तुच्छ भी समझती और बात-बात में उनका तिरस्कार करती, अपमान भी करती रहती थी। छोटों को तो वह बात-बात में डाँटती, मारती और अपना रौब गाँठती।

जैसा जिसका स्वभाव होता है उसकी वाणी भी वैसी बन जाया करती है। किसी की वाणी को सुनकर ही उसकी महानता या दुर्जनता या बुरे स्वभाव को समझा जा सकता है। अब रानी की वाणी भी उसके स्वभाव के ही अनुसार बड़ी कर्कश और कटुता-भरी हो गयी थी। बात-बात में गालियों का प्रयोग करना उसकी आदत बन चुकी थी।

यह सब देखकर रानी की माँ को बड़ी चिंता हुई। उसने सोचा कि अभी से ही यदि रानी को ऐसे अपशब्द बोलने की आदत पड़

गई तो बड़ा ही बुरा होगा। क्योंकि बाद में जबकि अभ्यास दृढ़ हो जाएगा तो यह सब इसके स्वभाव का अभिन्न अंग बन जाएगा। फिर इसे दूर करना बड़ा ही कठिन होगा। अतएव उसने रानी को बुलाया और बोली—'बिटिया ! देखो संसार में व्यक्ति किसी का धन के कारण आदर नहीं करते, रूप के कारण आदर नहीं करते, आदर करते हैं उसके व्यवहार के कारण, मीठी वाणी के कारण। हमारे धन, रूप या ज्ञान से दूसरों को लाभ नहीं होता, पर जैसा हम बोलते हैं उसका सीधा-सीधा प्रभाव उन पर पड़ता है। अतएव सदैव सच बोलो, मीठी बोली बोलो।'

माँ की बात सुनकर रानी तुनककर बोली—'ओह माँ ! मैं कब इस बात से मना करती हूँ।'

माँ फिर प्यार से समझाने लगी—'देख मुनिया ! तू बड़ा ही रूखा बोलने लगी है। बात-बात में गाली का प्रयोग करने लगी है। यह सब तुझे शोभा नहीं देता। गंदी आदत तो जितनी जल्दी छोड़ दी जाए उतना ही अच्छा है। गंदी बातों पर शुरू में ही यदि हम विचार नहीं करते, उन्हें पनपने देते हैं तो वे हमारे स्वभाव का अभिन्न अंग बन जाती हैं और फिर बाद में उन्हें छोड़ना बड़ा ही कठिन हो जाता है।'

रानी अपनी भौहें चढ़ाकर बोली—'माँ ! तुम तो बात-बात में उपदेश झाड़ती हो। इस समय मैं तुमसे आखिर कह भी क्या रही हूँ। चुपचाप बैठी अपना काम ही तो कर रही हूँ।'

यह सुनकर रानी की माँ तनिक कठोर स्वर में बोली—'देख ! मेरी एक बात तू सदैव गाँठ बाँधकर रखना कि कड़ुआ बोलने वाले का, झूठ बोलने वाले का और अपशब्द बोलने वाले का समाज में कभी सच्चा सम्मान नहीं होता। उसके परिवार के व्यक्ति उसकी रूखी और कठोर वाणी के कारण उससे स्नेह और सहानुभूति नहीं रखते। अपनी कड़वी जवान के कारण ऐसा व्यक्ति अपने आपको बड़ा ही अकेला और असुरक्षित-सा अनुभव करता है। उसके मित्र तो कठिनाई से बनते हैं, हाँ शत्रु बनते देर नहीं लगती।'

यह सुनकर रानी लगभग चीखती-सी बोली—'तुम क्या जानो मेरा महत्त्व और मेरा गुण। तुम्हें तो बस मेरी बुराइयाँ ही बुराइयाँ हर समय दिखलाई देती हैं। जब देखो तब बात-बात में टोकती ही रहती हो।'

'टोकती रहती हूँ तो तुम्हारे भले के लिए ही न।' माँ तुरंत ही बोली।

'मुझे नहीं चाहिए ऐसा भला।' यह कहती हुई रानी गुस्से से तमतमाती हुई बाहर निकल गई।

रानी की उद्दंडता दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी। उसकी माँ ने अनेक बार समझाने की चेष्टा की, पर उससे कोई प्रभाव न पड़ा। सच है कि जब गलती को गलती माना जाएगा तभी तो उसे दूर करने का प्रयास किया जाएगा। जब गलत आदत या काम गलत ही न लगे तो फिर उसे दूर भी कैसे किया जा सकता है ? रानी की माँ ने मन ही मन में कहा—'भगवान ही इसे अब तो सद्बुद्धि दें।'

एक दिन रानी तपती दोपहरी में बहुत देर तक वन में भटकती रही, पर उसे कुछ खाने को नहीं मिला। धूप और भूख के कारण वह बड़ी व्याकुल हो उठी। 'चलो पानी ही पीती हूँ' कुछ तो शांति मिलेगी।' ऐसा विचार करके वह नदी के किनारे पानी पीने गई। रानी ने अभी दो-चार घूँट पानी ही पिया होगा कि एक बलिष्ठ हाथी भी नदी के किनारे आकर पानी पीने लगा। भूख और गुस्से से रानी बेकाबू हो उठी और चीखते हुए जोर से बोली—'अबे ओ ! मैं तुमसे पहले आई हूँ। पानी को तू अभी झूठा न कर। पहले मुझे पानी पी लेने दे।'

हाथी ने अपनी लाल-लाल आँखें उस पर गढ़ाकर चिंघाड़ते हुए कहा—'तू-तड़ाक न बोलो, गाली न बको। चुपचाप पानी पी लो। नदी का पानी सभी के लिए है, सभी जानवर पानी पीते हैं। वह कभी झूठा नहीं होता है।'

रानी का क्रोध अब तो और भी अधिक बढ़ गया। वह आँखें निकालकर हाथ नचाते हुए बोली—'मूर्ख' ! जवान सँभालकर बात कर। तू भूल गया कि किससे बोल रहा है।'

यह सुनकर तो हाथी का गुस्सा बहुत ही भड़क उठा। 'हाँ महारानीजी ! मैं जानता हूँ कि किससे बातें कर रहा हूँ। आपकी और अपनी दोनों की औकात मैं अच्छी तरह से जानता हूँ।' ऐसा कहते हुए उसने रानी को अपनी सूँड में दबोचा और उठाकर दूर जमीन से दे मारा। वह मन ही मन बड़बड़ा रहा था—'चाहे इसके काँटे मेरी सूँड में गढ़ जाएँ, पर आज इसे सबक सिखाकर ही रहूँगा। दिन पर दिन बड़ी उद्दंड होती चली जा रही है यह।'

पलभर को रानी समझ ही नहीं पाई कि यह हुआ क्या ? उसे तो स्वप्न में भी ऐसी उम्मीद न थी। वह जानती थी कि उसके काँटे दूसरों के शरीर में गढ़ जाते हैं अतएव सभी उसे छूने से डरते हैं। कुछ देर तक तो वह अचेत-सी पड़ी रही। होश आने पर जैसे-तैसे उठी। पर यह क्या ? उससे तो चला भी नहीं जा रहा था। रानी को पग-भर भी बढ़ना कठिन लग रहा था। गनीमत यह थी कि उसका घर वहाँ से कुछ पास ही था। जैसे-तैसे कई घंटों में वह अपने घर पहुँच पाई। घर जाते ही वह कराहते हुए जमीन पर गिर पड़ी। रानी की माँ ने उसे देखकर ही समझ लिया कि इसकी रीढ़ की हड्डी टूट गई है। दो महीने तक निरंतर उपचार करने के बाद रानी की हड्डी जुड़ तो गई, पर बड़ी ही टेढ़ी जुड़ी। अब तो वह कमर, झुकाकर, टेढ़ी-तिरछी होकर चलती है और तेज भाग भी नहीं सकती। आस-पड़ौस के सभी बच्चे उसे कुबड़ी बुआ कहकर चिढ़ाते हैं।'

रानी के मन में अब रह-रहकर इसी बात का पश्चाताप उठता है कि यदि वह सच्चाई को पहले पहचान लेती, अपनी गंदी आदत छुड़ा लेती तो क्यों यह दुर्दिन देखना पड़ता।



मोटा गुल्लू

चन्दो चुहिया का एक ही बच्चा था। वह उसे प्यार से गुल्लू कहकर पुकारती थी। इकलौता होने के कारण चंदो उसको कुछ ज्यादा प्यार करती थी। यह भी कहना अनुचित न होगा कि उसने प्यार-प्यार में गुल्लू को बिगाड़ दिया था। वह गुल्लू को किसी काम से हाथ न लगाने देती। सारे काम खुद ही भाग-भागकर करती, भले ही थककर चूर-चूर हो जाए। वह गुल्लू को खूब ठूँस-ठूँसकर खाना खिलाती, खुद कई बार भूखी रह जाती। वह उसे घर से बाहर न निकलने देती। उसके बाहर जाने पर उसे लगातार यही डर बना रहता कि कहीं वह रास्ते में पिच न जाए, कहीं पूसी मौसी उसे पकड़ न ले। चंदो के इस अंधे दुलार का फल यह हुआ कि गुल्लू कामचोर, पेटू और डरपोक बन गया।

बचपन में जो आदतें पड़ जाती हैं वे बड़े होने पर विकसित होती हैं। इसीलिए बुद्धिमान माता-पिता बचपन से ही अपने बच्चों को अच्छी बातें सिखाते हैं, उनकी गलतियों को बचपना कहकर बढ़ावा नहीं देते। चंदो अब गुल्लू को यदि कुछ सिखाने की कोशिश भी करती तो वह कानों पर उतार देता। कुछ भी सीखने का-करने का उसका मन न करता। उसे तो बस दो ही काम अच्छे लगते। खाना और पड़े रहना।

गुल्लू दिन पर दिन मोटा होता जा रहा था। पड़ौसी बच्चे उसे मोटूराम कहकर चिढ़ाते। चंदो को यह बहुत बुरा लगता। वह सोचती हाय, ये मेरे लाल को नजर लगा देंगे, इसलिए वह अपने पड़ौसियों से कहती—'बहिन, मेरा लाल गुल्लू तो कुछ खाता पीता ही नहीं। जो भी लाती हूँ, सब इधर-उधर पड़ा रहता है ।' पड़ौसिनें उसके सामने तो सहानुभूति दिखातीं पर बाद में हँसती, मजाक बनातीं और

आपस में कहतीं—'हाय बेचारा गुल्लू—दिनभर नहीं खाता पर फ़िर भी मोटा होता जाता है।'

एक दिन चंदो गुल्लू और पड़ौस के कुछ बच्चों के साथ किसी दावत में गई। वहाँ सभी ने छककर खाया और चटखारे भरते हुए घर वापिस लौटे। रास्ते में पूसी मौसी से भेंट हो गई। वह उनके आने की घात लगा बैठी थी। पूसी को देखकर सारे बच्चे झट से भाग छूटे पर गुल्लू कोशिश करके तेजी से भाग पाया। चंदो उससे बार-बार भागने के लिए कह रही थी पर थोड़ा-सा भागने के बाद ही उसकी साँस फूल गई। आखिर चंदो ने उसे धक्का देकर नाली में गिरा दिया तब कहीं जाकर वह पूसी के पंजे से बचा।

घर जाकर चंदो ने गुल्लू को खूब डाँटा वह कह रही थी—'मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आखिर कब तक लगी रहूँगी। तुम और कुछ चाहे सीखो या न सीखो पर अपना बचाव करना तो सीख लो, नहीं तो किसी दिन जान से ही हाथ धोना पड़ेगा।

माँ ने आज तक कभी गुल्लू को नहीं डाँटा था। वह रुआँसा हो गया और बोला—'माँ, मुझसे भागा नहीं जा रहा था। मैं करूँ भी क्या, जरा-सा चलता हूँ, दौड़ता हूँ, मेरा साँस फूलने लगता है। जरा-सा काम करता हूँ, थक जाता हूँ।'

गुल्लू की बातें सुनकर चंदो चिंता से भर उठी। 'आह बेटे, ये तो कमजोरी के लक्षण हैं। कल ही तुम्हें ननकू दादा को दिखाऊँगी' वह बोली। ननकू पड़ौस का बुड्ढा चूहा था। वह बड़ा अनुभवी था। बीमार होने पर सभी चूहे उसी से सलाह लेते थे और स्वस्थ हो जाते थे।

दूसरे दिन ननकू दादा ने आकर गुल्लू की अच्छी तरह जाँच की। उसे कोई बीमारी न थी। जगह-जगह उसके शरीर पर चर्बी लटकी पड़ रही थी। उसी के कारण चलने-फिरने में परेशानी होती थी। ननकू पूछने लगा—'बेटे, तुम क्या-क्या काम करते हो ?'

जवाब दिया चंदो ने। बोली—क्या बताऊँ दादाजी, जरा-सा काम करता है तो हाँफने लगता है यह। इसलिए मैं इससे कुछ काम ही नहीं कराती।'

ननकू बोला—'बस यही तुम गलती कर रही हो। तुम्हारा बेटा किसी रोग का शिकार नहीं है—अधिक खाने का, बदहजमी का, अपच और आलस का शिकार है।'

मैं समझी नहीं दादाजी चंदो कहने लगी।

ननकू उसे समझाने लगा—देखो, अधिक खाने से, खाकर पड़े रहने से शरीर बीमारियों का घर बन जाता है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है कि अधिक न खायें, सारे दिन न खायें और श्रम करके खाए हुए को पचाएँ जो खूब श्रम करता है, उसका खाना अच्छी तरह पचता है, जिससे शुद्ध खून बनता है और शरीर बलिष्ठ होता है।

'बात तो आप ठीक कहते हैं, चंदो बोली।

'तुमने अपने बेटे में खूब खाने की तो आदत डाली है पर काम करने की नहीं। इसलिए उसके शरीर पर चर्बी बढ़ती जा रही है। चर्बी का बढ़ना स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं, खराब ही है। इससे अनेक बीमारियाँ पनपने लगती हैं। तुम इसका जल्दी ही इलाज करो' ननकू कह रहा था।

'क्या इलाज करूँ दादाजी' रुँआसी होकर चंदो बोली।

ननकू ने समझाया—'समय से खाना दो। बार-बार और स्वाद-स्वाद में अधिक खाने की आदत छुड़ाओ। गुल्लू को काम में लगाए रखो। सुबह शाम इसे दो मील घुमाने ले जाओ। कसरत कराओ। कुछ ही दिनों में इसकी चर्बी घट जाएगी।

चंदो ने धन्यवाद देकर ननकू को विदा किया। फिर वह गुल्लू को सुधारने में जुट गई। उसकी कामचोरी की, अधिक खाने की आदत छुड़ाने में उसे बड़ा श्रम करना पड़ा, मन को कठोर बनाना पड़ा। पर अंत में चंदो अपने काम में सफल ही रही। छः महीने की लगातार कोशिश से गुल्लू दूसरे बच्चों की तरह फुर्तीला और काम करने वाला बन गया। चंदो अब कभी गुल्लू से अधिक खाने का भी आग्रह नहीं करती। वह सब समझ गई है कि कम खाने से कोई हानी नहीं होती। ठूस-ठूस कर खाने से ही बीमारियाँ शरीर में घर करती हैं।



व्यक्तित्व की परख

एक बार हाथियों का एक झुंड हिमालय की उपत्यकाओं में घूम रहा था तभी सहसा जोरों का तूफान आया। सभी तेजी से भागने लगे। जिसे जिधर से रास्ता सूझा, वह उधर भागने लगा। जरा सी देर में झुंड तितर-बितर हो गया।

भटकता हुआ हाथी सुरक्षित स्थान खोजते-खोजते एक छोटी-सी गुफा के पास पहुँचा। उसमें बस आराम से हाथ पैर फैलाकर बैठने भर की जगह थी। 'अरे इतनी जगह ही बहुत है, ऐसा मन ही मन सोचते हुए वह हाथी गुफा में जा बैठा। उसने अपनी सूड़ आसमान की ओर उठाई और दोनों हाथ जोड़कर चिंघाड़ा—'प्रभु ! तू ही आश्रितों को शरण देता है।'

तभी बाहर जोरों की बिजली कड़की। मानो वह भी कड़क-कड़ककर हाथी की बात का समर्थन कर रही हो। बिजली के प्रकाश में गुफा के द्वार से सटे पत्थर की दरार में हाथी ने देखा कि बाहर अजगर बैठा है। वह ओलों की मार से ठिठुर रहा है। विशालकाय अजगर दीवार से बिलकुल सटकर बैठा जिससे ओलों की मार से कुछ बचाव हो सके। यह देखकर हाथी को दया आ गई। उसने तेजी से गुफा के द्वार पर रखा पत्थर हटाया। हाथी ने अपना सिर थोड़ा-सा बाहर निकाला और बोला—'अजगर भाई, आओ अंदर आ जाओ। आखिर ओले-पानी से कुछ तो बचाव होगा ही आज तो ऐसा तूफान आ रहा है कि लगता है कि प्रलय ही आ गई हो।

अजगर की आँखें कृतज्ञता के भावों से भर उठीं। पर जैसे ही सिर गुफा में डाला वह बोल उठा—'अरे' यहाँ तो तुम अकेले ही आराम से बैठ सकते हो।'

'आराम से नहीं तो थोड़ी घिस-पिच से ही बैठ जाएँगे भाई। आखिर सदा तो यहाँ रहना नहीं है कभी न कभी तो तूफान आखिर

थमेगा ही हाथी अपनी आँखें मिचमिचाते हुए, दीवार से सटकर बैठते हुए बोला।

अजगर भी जितनी कम से कम जगह में बैठ सकता था, बैठ गया। फिर वह बोला, 'हाथी भाई' तुमसे परिचय पाकर धन्य हो गया हूँ। संकट की घड़ी में जो दूसरों की बात सोचते हैं अपना सुख छोड़कर उनकी सहायता करते हैं, वह वास्तव में महान् होते हैं।'

तभी हाथी जौरों से चिंघाड़ा। उत्तर में लगा जैसे दूर से कोई हल्की-सी आवाज आई हो, तुमने सुना क्या कुछ ? कानों को हिलाता, ध्यान से सुनने की कोशिश करता हुआ हाथी बोला।

'मुझे तो कुछ भी सुनाई नहीं देता' अजगर भी चौंकन्ना होकर बोला।

'लगता है द्वार पर कोई है' हाथी ने कहा अपनी जगह से वह उठा दरार में से झाँकने लगा। बाहर एक मोटा भालू खड़ा था। तूफान के कारण वह अधमरा-सा हो रहा था। हाथी ने जल्दी से द्वार का पत्थर हटाया और बोला—'तेजी से अंदर आ जाओ।'

भालू अंदर तो घुस आया पर वहाँ अब तीनों के खड़े होने की भी जगह न थी।

'ऐसा करता हूँ भाई, मैं बाहर चला जाता हूँ, तुम दोनों बैठो, अजगर ने कहा और बाहर की ओर खिसकने लगा।'

'मैंने बेकार ही तुम्हें कष्ट दिया। मैं भी बाहर चला जाता हूँ। जीवन होगा तो बच ही जाऊँगा।' भालू ने कहा और वह भी थके कदमों से बाहर की ओर जाने लगा।

हाथी ने अजगर की पूँछ खींचते हुए कहा—'अरे कहाँ चले तुम। बड़ी जल्दी मचाते हो समस्या का हल मैंने सोच लिया है।'

'क्या तुम बाहर जाओगे ?' अजगर और भालू दोनों ने एक साथ पूछा।

'नहीं, हममें से कोई बाहर नहीं जाएगा।' हाथी गंभीर स्वर में बोला।

'फिर कैसे होगा' अजगर ने आश्चर्य से पूछा।

'होगा यह कि भालू भैया मेरी पीठ पर बैठ जाएगा। इस प्रकार हम तीनों को ही यहाँ बैठने की जगह मिल जाएगी। तीनों का ही तूफान से बचाव हो जाएगा,' हाथी ने कहा।

भालू तब तक कुछ सोच विचार भी न पाया कि हाथी ने झट अपनी सूँड़ से पकड़कर उसे पीठ पर बैठा लिया।

'हाथी दादा, मुझ मोटे के बोझ से तुम्हारी पीठ दुःख जाएगी।' गद्‌गद् कंठ से भालू बोला। चुप रह रे। ज्यादा न बोल। बहुत करे तो तूफान थमने पर बाहर निकलकर मेरी पीठ दबा दीज्यो, मालिश कर दीज्यो और हाँ नई हाथी प्यार से उसके सिर पर चपत लगाते हुए बोला।

पूरे एक दिन और एक रात तूफान चलता रहा। तूफान थमने पर हाथी, अजगर और भालू बाहर निकले। असंख्यों प्राणी मरे पड़े थे। उसे देखकर भालू सिहर उठा। बोला—हाथी दादा तुम रक्षा न करते तो हमारी भी यही गति होती ।

हाथी ने उत्तर दिया—"रक्षा करने वाला तो भगवान होता है भैया मैं तो बस इतनी-सी बात मानकर चलता हूँ कि जैसे सुख-दुःख हमें होता है वैसे ही दूसरों को भी होता है। इसलिए अपने साथ-साथ औरों का भी ध्यान रखें।

'पर कितने व्यक्ति ऐसा कर पाते हैं ? उपदेश देना सरल है, उसे व्यवहार में लाना उतना ही कठिन है, अजगर बोला।

भालू सिर हिलाते हुए बोला—'हाँ, इसलिए तो व्यक्ति जो कुछ कहता है उससे नहीं, जो कुछ वह आचरण करता है, उससे उसकी परख होती है, व्यवहार ही वह दर्पण है जिसमें किसी का वास्तविक रूप सहजता से देखा जा सकता है।'

मोड़ पर आकर सहसा ही हाथी ठिठका और बोला—'अच्छा भाई अब विदा। मेरा रास्ता अब तुमसे अलग होता है।'

भालू और अजगर दोनों विनम्रता से सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर बोले—'दादाजी, आपने स्वयं कष्ट सहकर भी हमें शरण दी

है, हमारा जीवन बचाया है—यह हम कभी भी नहीं भूलेंगे। यह हमारा सौभाग्य होगा कि आपके लिए कभी कुछ कर पाएँ।

'भगवान तुम्हारी यह भावना सदैव बनाए रखें, तुम्हें सुख-शांति दे' हाथी ने आसमान की ओर सूँड़ उठाकर कहा। फिर वह दोनों के सिर प्यार से थपथपाकर आगे बढ़ गया।

जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गया, भालू और अजगर उसे एकटक देखते रहे। अजगर फुसफुसाकर बोला—'संसार में न धूर्तों की कमी है न महान् आत्माओं की। हमें अच्छे व्यक्तियों का ही अनुकरण करना चाहिए जिससे यह जीवन सफल और सार्थक बने।

भालू ने भी सहमति में सिर हिलाया। फिर हाथी की उदारता की प्रशंसा करते हुए उन दोनों ने भी विदा ली और अपने-अपने रास्ते पर चल दिए।



बीमारियों की जड़

एक बार भास्कर नाम का एक सिंह और उसकी पत्नी रानी घूमते-घूमते अपनी गुफा से बहुत दूर निकल गए। बातों ही बातों में उन्हें रास्ते का कुछ पता ही न रहा और वे नदी के पार बसे हुए दंडकारण्य वन में जा पहुँचे। रानी को यह वन बहुत अधिक पसंद आया। चारों ओर पहाड़ियाँ उनकी गोद में फैली हरियाली, कल-कल, छल-छल करके बहती नदी सभी ने उसके मन को मोह लिया। सिंहनी ने अपने पति को स्पष्ट निर्णय सुना दिया 'आज से हम दंडकारण्य में ही रहेंगे।'

भास्कर ने भी इसका विरोध न किया। उसे स्वयं भी देशाटन अच्छा लगता था। वह सदैव यही कहता था कि स्थान-स्थान पर घूमने से बहुत अधिक ज्ञान बढ़ता है। दूसरे भास्कर का स्वभाव भी बहुत अच्छा था। वह जहाँ भी जाता था, जल्दी ही वहाँ के प्राणियों में घुलमिल जाता था। यही नहीं कि विनयशीलता, परोपकार, अनुशासन, सत्यवादिता, सच्चरित्रता आदि गुणों के कारण ही वह बहुत लोकप्रिय हो जाता था।

भास्कर के गुणों के कारण दंडकारण्य के जीव-जंतु भी थोड़े ही दिनों में उसे बहुत चाहने लगे। संयोग की बात कि कुछ ही दिनों बाद दंडकारण्य का राजा मर गया। कौन राजा हो ? इस विषय को लेकर सभी प्राणी चिंतित हो उठे। चिंता की बात भी थी। अयोग्य और अत्याचारी शासक अपनी बुद्धिहीनता से, स्वार्थपरता से प्रजा का शोषण करता रहता है, ऐसे राजा से तो राजा के बिना रहना ही अच्छा।

दंडकारण्य के प्राणियों ने बड़े सोच-विचार कर भास्कर को अपना राजा चुना, पर विजयेंद्र नाम के एक सिंह को यह अच्छा न लगा। वह मन ही मन सोच रहा था कि उसे ही राजा चुना जाएगा।

वह अपना विरोध प्रकट करते हुए बोला—एक अपरिचित पर आप कैसे विश्वास कर रहे हैं। शुरू में तो सभी अच्छे दीखते हैं, पर बाद में ही उनके दोष दिखाई देते हैं। राजा चुनना चाहिए उसे जो प्रारंभ से ही हमारे बीच रहा हो, जिसे हम शुरू से ही अच्छी तरह जानते हों।

पर विजेंद्र की इस बात का किसी ने कोई समर्थन न किया। चेता लोमड़ी बोली—भास्कर दादा अब हमारे लिए अपरिचित भी कहाँ हैं ? उन्हें हमारे साथ रहते-रहते पूरे आठ महीने बीत चुके हैं। किसी व्यक्ति को जानने के लिए इतना समय क्या कम होता है ?

राजा भालू बोला—कौन कैसा है ? इसकी परख बुद्धिमान थोड़े ही समय में कर लिया करते हैं। कोई भी अपने स्वभाव को बहुत दिनों तक छिपा नहीं सकता। कृत्रिमता और आडंबर कुछ ही समय तक दूसरों को धोखे में डालते हैं।

पद्मा हथिनी बोली—योग्यता और गुणों के आधार पर राजा का चुनाव होना चाहिए, न कि अपने-पराए की संकुचित मनोवृत्ति के आधार पर।

भास्कर आखिर सर्वसम्मति से दंडकारण्य का राजा चुन ही लिया गया। विजयेंद्र अपना-सा मुँह लेकर रह गया। उसने बड़े अपमान का अनुभव किया और मन ही मन प्रतिज्ञा की भास्कर से इसका बदला लेकर ही रहेगा।

अब विजयेंद्र भास्कर से बदला लेने का कोई मौका ढूँढ़ता ही रहता। वह हर जगह उसकी बुराई करता, जानवरों को भड़काता। भास्कर को पदच्युत करने के लिए विजयेंद्र ने अनेक षडयंत्र रचे। वह बस इसी बात को लेकर सोचता, घुलता और कुढ़ता रहता कि किसी भी प्रकार भास्कर को अपमानित करे। इसके लिए वह नई-नई योजनाएँ बनाता, जंगल के प्राणियों को अपनी ओर मिलाने की कोशिश करता। दूसरों के बहकावे में आकर गलत को भी सही कहने वालों की कहीं भी कमी नहीं होती। विजयेंद्र ने भी जंगल के कुछ

मूर्ख प्राणियों को अपनी ओर मिला लिया। वे सभी मिलकर भास्कर के विरुद्ध षडयंत्र रचते।

इधर भास्कर ने अपने गुणों से प्रजा का मन जीत लिया था। दुर्जन ऊँचा पद पाकर अहं से भर उठते हैं, अपनी शक्ति का प्रयोग दूसरों को पीड़ित करने में करते हैं। इसके विपरीत महान् व्यक्ति ऊँचा पद पाकर और अधिक विनम्र बन जाते हैं तथा अपनी शक्ति का उपयोग दूसरों की सहायता और उपकार में करते हैं। भास्कर भी ऊँचा पद पाकर और अधिक विनम्र और परोपकारी बन गया था। प्रजा को भलाई सोचने और करने में वह हर समय अपने आपको जुटाए रखता था, अपने पद और अधिकार का प्रयोग उसने कभी भी व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं किया था। ऐसा शासक बड़े सौभाग्य से मिलता है फिर भला प्रजा उसे प्यार क्यों न करती ?

देर या सबेर, एक न एक दिन तो सचाई आखिर सामने आती ही है। विजयेंद्र के षडयंत्रों का जल्दी ही भंडाफोड़ हो गया। उसकी करतूतों को जानकर जानवर बड़े क्रुद्ध हुए और उसे मारने के लिए उस पर टूट पड़े। भास्कर ने बीच-बचाव करके बड़ी मुश्किल से उसे बचाया अन्यथा उस दिन तो विजयेंद्र के प्राण ही निकल गए होते। विजयेंद्र की चापलूसी करने वाले हर समय उसके आगे-पीछे हिलने वाले उसे भड़काने वाले साथियों का पता तक न था। जिनका कोई सिद्धांत नहीं होता, आदर्श नहीं होता ऐसे चापलूस तभी तक आगे-पीछे घूमते हैं जब तक उनका अहं या स्वार्थ पूरा होता है। वे व्यक्ति को नहीं पद को प्यार करते हैं। व्यक्ति के अधिकार हीन होते ही वे ऐसे मुँह फिरा लेते हैं जैसे वे उसे जानते ही न हों।

भास्कर बहुतेरा न-न करता रह गया, पर जंगल के सभी जानवरों ने सर्वसम्मति में विजयेंद्र के देश निकाले का प्रस्ताव पारित कर दिया। लाचार होकर विजयेंद्र को एक दिन अपनी पत्नी के साथ दंडकारण्य से निकलना ही पड़ा।

विजयेंद्र ने पास के ही एक वन में शरण ली। वह अब भी अपनी गलती मानने को तैयार न था। अभी भी यही कहता रहता

'आखिर मैं किस बात से उस भास्कर के बच्चे से कम हूँ ?' ईर्ष्या और द्वेष की भावनाओं से भरा विजयेंद्र हर समय कुढ़ता और जलता रहता। उसकी पत्नी उसे समझाती 'देखोजी' जो हुआ उसे भूल जाओ। यों हर समय सोचते रहने से तो तुम बीमार पड़ जाओगे।' पत्नी को भी विजयेंद्र डाँटकर चुप कर देता। उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो गया था, वह हर समय झल्लाता रहता। फल यह हुआ कि जंगल का कोई जानवर उससे बात न करता। चिड़चिड़े और बात-बात में झल्लाने वाले, दूसरों से ठीक से बात न करने वाले के पास आखिर बैठता ही कौन है ?

तन की भावनायें शरीर पर बड़ा गहरा प्रभाव डालती हैं। मन के विकार बड़े घातक होते हैं तथा अनेक शारीरिक बीमारियाँ उत्पन्न कर देते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, छल-कपट, मोह, काम-क्रोध आदि विनाश करने वाले घातक रोग हैं। तन के रोगों को तो देखा जा सकता है, पर ये ऐसे भयंकर होते हैं कि अंदर ही अंदर छिपकर जड़ जमाकर बैठ जाते हैं और धीरे-धीरे सर्वनाश कर डालते हैं। मन के रोगों के जाल में विजयेंद्र भी ऐसा उलझा कि धीरे-धीरे शैय्या से लग गया। उसके लिए उठना-बैठना भी दूभर हो गया। पत्नी शिकार करके ला देती तो वह थोड़ा-बहुत जैसे-तैसे खा लेता।

विजयेंद्र की ऐसी गंभीर स्थिति देखकर उसकी पत्नी का मन पीड़ा से कराह उठा। उससे आखिर रहा न गया और चुपचाप राजवैद्य देवदत्त सिंह के यहाँ दौड़ी गई। दुःख की अधिकता से उससे कुछ बोला न जा रहा था। उसकी आँखों से निरंतर आँसू बह रहे थे। विजयेंद्र की पत्नी ने देवदत्त के पैर पकड़ लिए और इतना ही कह पाई—वैद्यजी, दया कीजिए मेरे पति को बचा लीजिए।

उसकी करुण स्थिति देखकर वैद्यजी का मन भी पिघल गया। बैठो बहिन, धैर्य करो, कहकर उन्होंने आँसू पोंछे।

क्या हुआ है तुम्हारे पति को ? वैद्यजी ने पूछा।

विजयेंद्र की पत्नी ने निस्संकोच दंडकारण्य से लेकर अब तक की सभी घटनाएँ और स्थितियाँ कह सुनाईं। वैद्यजी बड़े ध्यान से

सारी बातें सुनकर बोले—ओह, तुम्हारे पति को प्रमुख रूप से मन के रोग हैं। हमारे मन में भी अनेक रोग छिपे रहते हैं, पर जब हम इनसे लापरवाह रहते हैं, इन्हें पनपने देते हैं तो हमारे विकास को रोक देते हैं, जीवन को कलह और दुःख से भर देते हैं। मन के रोग ईर्ष्या—क्रोध आदि शरीर के रोगों से भी अधिक भयानक होते हैं। यही हमारे असली दुश्मन होते हैं। मन के ये रोग अनेक प्रकार के शारीरिक रोगों को जन्म देते हैं, ये शरीर को बीमारियों का घर बना डालते हैं इसलिए बुद्धिमान इनसे सदैव बचते हैं।

फिर कुछ देर रुककर कुछ सोचते हुए देवदत्त बोले—बहिन, तुम मेरे पास देर करके आई हो, फिर भी तुम्हारे साथ चलता हूँ—शायद कुछ हो सके।'

वैद्य देवदत्त ने विजयेंद्र की पूरी तरह जाँच की। ईर्ष्या, द्वेष, कुढ़न आदि मानसिक बीमारियों ने उसका शरीर पूरी तरह से घुला दिया था। वह हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था। उसका चेहरा भी बड़ा भयंकर सा लग रहा था। सच है, जैसे हमारे मन के भाव होते हैं मुख की आकृति भी वैसी ही बन जाया करती है। हमारा मुख वह शीशा है जिसमें बुद्धिमान व्यक्ति हमारे मन के विचारों को पढ़ लेते हैं।

देवदत्त ने विजयेंद्र को समझाया—बच्चे अपने आप को सँभालो, अपने मन पर संयम रखो। अपनी अच्छी या बुरी स्थिति के लिए हम स्वयं उत्तरदायी हैं। क्यों अपने आपको बरबाद करते हो ? अपने मन को स्वस्थ बनाओ, प्रसन्न बनाओ, निर्मल बनाओ। तब तुम देखोगे कि तुम्हारी शारीरिक बीमारियाँ भी कितनी जल्दी भाग जाती हैं।

विजयेंद्र को वैद्यजी की बातें बिलकुल भी अच्छी न लगीं। उसने उपेक्षा से मुँह फिरा लिया, उन्होंने भी कुछ कहना ठीक नहीं समझा। दूसरों की बात को कोई महत्त्व न देने वाले दुराग्रही से अधिक कुछ कहने-सुनने से लाभ भी क्या ?

वैद्यजी के चले जाने पर विजयेंद्र ने अपनी पत्नी को बहुत डाँटा कि वह क्यों उन्हें बुलाकर लाई, उसने उनकी बताई कोई दवा भी नहीं ली। यों ही घुलते-घुलते एक दिन विजयेंद्र आखिर मर गया।

उसकी पत्नी फूट-फूटकर रो उठी। वह बार-बार यही सोच रही थी कि मन के विकारों ने मेरे पति को घुला-घुलाकर मार डाला। एक साथ मर जाना उतना कष्ट देने वाला नहीं है जितना मानसिक यंत्रणा सहते हुए तिल-तिल करके मरना।

विजयेंद्र की पत्नी ने दस-बारह दिन इसी शोकमयी स्थिति में बिताए, फिर उसने मन ही मन कुछ विचार किया और एक नये संकल्प के साथ अपनी गुफा से निकल पड़ी। अब वह जगह-जगह घूमकर सभी जीव-जंतुओं को यही समझाया करती है—यदि जीवन को सुखी बनाना है, सफल बनाना है तो न केवल शारीरिक स्वास्थ्य का ध्यान रखो वरन् मन को भी प्रसन्न और विकारों से रहित बनाओ ! ईर्ष्या, द्वेष, घमंड, कुढ़न, काम, क्रोध, लोभ आदि भी रोग हैं। ये मन के रोग शरीर के रोगों से अधिक भयानक हैं। शारीरिक रोग तो दिखाई दे जाते हैं और हम उनका उपचार कर लेते हैं, पर मन के रोग ऐसे घातक होते हैं कि दिखायी नहीं देते। ये धीरे-धीरे चुपचाप हमारे शरीर को और शक्तियों को खोखला बना डालते हैं, हमें बरबाद कर देते हैं।

बार-बार समझाए जाने से उस वन के प्राणी विजयेंद्र की पत्नी की बातों के महत्त्व को समझने लगे हैं और उसके बतलाए मार्ग पर चलने की कोशिश करते हैं। विजयेंद्र की पत्नी पति के प्रति यही अपनी सच्ची श्रद्धांजलि मानती है।



समाज के शत्रु

दंडकारण्य में जब सिंहों का राजा मर गया तो उन्होंने नए राजा का चुनाव किया। दिवाकर को सभी सिंहों ने अपना राजा चुना। नए पद पर आकर दिवाकर ने सोचा कि अब मुझे इनके विश्वास की रक्षा करनी चाहिए, मुझे अपना अधिक से अधिक समय प्रजा की भलाई में ही व्यतीत करना चाहिए।

दिवाकर ने अपने राज्य की सर्वांगीण प्रगति के लिए अनेक योजनाएँ बनाईं। उन योजनाओं की पूर्ति करने और कराने के लिए उसे अनेक राजकर्मचारियों की नियुक्ति की आवश्यकता अनुभव हुई। उसने पूरे जंगल में यह घोषणा करा दी कि कल महाराज मंत्रियों और अन्य राजकर्मचारियों की नियुक्ति करेंगे। अतएव जंगल के सभी जानवर प्रातः १० बजे नदी के पास उत्तर दिशा वाले मैदान में इकट्ठे हो जाएँ।

दिवाकर राजकर्मचारियों के चुनाव को लेकर कुछ चिंतित-सा था। यह बात वह बहुत अच्छी तरह जानता था कि राजकर्मचारी राजा की बहुत बड़ी शक्ति होते हैं। राजा इन्हीं के माध्यम से राजकार्य चलाता है। वे जैसा अच्छा या बुरा काम करते हैं वैसे ही विचार प्रजा राजा के विषय में बना लेती है। ईमानदार और कर्त्तव्य परायण ही राज्य की उन्नति करते हैं। भ्रष्ट और चरित्रहीन राजकर्मचारी तो राजा को, पूरे के पूरे राजतंत्र को बदनाम ही कर दिया करते हैं।

दिवाकर ने राजकर्मचारियों का खूब सोच-समझकर, ठोक-बजाकर चुनाव किया था। उसे अपनी निरीक्षण शक्ति पर, दूसरों को परखने के गुण पर विश्वास था। दिवाकर का यह विश्वास काफी सीमा तक सही भी सिद्ध हुआ। उसके अधिकांश मंत्री और कर्मचारी

बड़े ही परिश्रमी, ईमानदार और प्रजा के हित के लिए निरंतर जुटे रहने वाले थे।

राजकर्मचारियों के उस समूह में भूल से एक धूर्त गीदड़ भी आ गया था। गलती इसमें दिवाकर की भी नहीं थी। वह गीदड़ जग्गू बात करने में बड़ा ही कुशल था। उससे बातें करते समय लगता था कि वह बड़ा ही योग्य और ज्ञानी है। उसकी व्यावहारिकता और बात करने की कला दूसरों को बड़ी जल्दी प्रभावित कर लेती थी। उसकी बातें सुनकर लगता था कि वह न जाने कितना आदर्शवादी है।

पर अंदर से जग्गू इससे बिलकुल भिन्न था। वह बड़ा ही धूर्त, कपटी और आलसी था। जब उसने देखा कि महाराज दिवाकर और प्रजा दोनों ही उस पर विश्वास करने लगे हैं तो अपना वास्तविक रूप दिखाना प्रारंभ किया। अब वह काम बहुत थोड़ा नाम-मात्र को करता था। सारे दिन वह आराम करता और छोटे-छोटे जीव-जंतुओं से अपनी सेवा कराया करता। जब चाहे किसी को डरा धमकाकर उसका माल हड़प जाता। जग्गू चाहे किसी को अपमान कर देता, चाहे किसी पर अपना रौब गाँठने लगता। यह तो महाराज का विश्वासपात्र है उनसे न जाने कब जाकर क्या कह दे—इस भय से उसके सामने कोई नहीं बोलता था। इसका परिणाम यह हुआ कि जग्गू और अधिक मनमानी करने लगा। अत्याचारी का यदि विरोध न किया जाए तो उसे और शोषण करने के लिए बढ़ावा मिलता ही है।

दूसरे कर्मचारियों को प्रारंभ में ही जग्गू के सारे दुर्गुण तो पता नहीं लगे पर उसकी कामचोरी की आदत ही उनके सामने आ गई। उन्होंने कई बार जग्गू को टोका भी कि तुम ठीक से काम किया करो, पर जग्गू उनकी बात कानों पर उतार देता। एक दिन मंत्री गजराज ने जब जग्गू को कामचोरी के लिए डाँटा तो जग्गू भड़क उठा।' तुम कौन होते हो मुझे टोकने वाले ?' उसने बड़ी ही धृष्टता से कहा। गजराज ने उसके मुँह लगना उचित न समझा।

जग्गू के स्वभाव का प्रभाव अब कुछ दूसरे जानवरों पर भी पड़ने लगा था, वे भी उसी की भाँति कामचोरी करते, खाते और पड़े

रहते। कुछ दिनों तक ऐसे ही चलता रहा। फिर यह सूचना महाराज दिवाकर के पास भी पहुँची। उन्हें कर्मचारियों के विषय में जब यह बात पता लगी तो उनको बड़ा दुःख हुआ। दिवाकर ने स्वयं इस विषय की जाँच पड़ताल की और इस बात को सच पाया। तब उन्होंने जग्गू और सभी कामचोर जानवरों को काम से निकाल दिया। यही नहीं अपितु दो दिन के अंदर उन्हें जंगल छोडकर चले जाने का आदेश भी सुना दिया।

गजराज और अन्य मंत्रियों ने महाराज दिवाकर से अनुरोध भी किया कि वे जग्गू और अन्य कर्मचारियों को इतना कठोर दंड न दें। पर दिवाकर ने भयंकर गर्जना करते हुए कठोर स्वर में कहा 'मुझे कामचोर रिश्वत लेने वाले कर्मचारी बिलकुल भी पसंद नहीं। ये राजद्रोही हैं, इन्हें तो जितना दंड दिया जाए, उतना ही कम होगा। बुरे विचार वाले, बुरी आदतों वाले व्यक्ति का समाज से हटाया जाना ही अच्छा है। ऐसा व्यक्ति न केवल स्वयं बुरे विचार रखता है अपितु अपने संपर्क में आने वाले अन्यों में भी उस विचार का प्रसार करता है। यह हमारे स्वभाव की विशेषता होती है कि दूसरों की अच्छाई तो हम देर से ग्रहण कर पाते हैं पर बुराई जल्दी ही सीख लेते हैं। इसीलिए तो अच्छे व्यक्तियों की संगति को इतना महत्त्व दिया जाता है।

महाराज, बात तो ठीक ही है आपकी। गजराज तथा अन्य मंत्रियों ने कहा।

जग्गू और दूसरे जानवर दिवाकर के सामने बहुत गिड़गिड़ाए कि अब वे ऐसा कार्य नहीं करेंगे। पर दिवाकर ने स्पष्ट ही कह दिया—'यह दंड तो भुगतना ही होगा। हाँ, यह हो सकता है कि यदि तुम अपनी गलतियाँ सुधार लो तो परीक्षा लेने के बाद तुम्हें फिर इस जंगल में रहने की अनुमति मिल सकती है।'

हारकर जग्गू और उसके साथी अपना-सा मुँह लेकर उस जंगल में चले गए।



चींटी और मधुमक्खी

गर्मियों के दिन थे। सूरज भगवान गुस्सा होकर मानो आग की वर्षा-सी कर रहे थे। जीव-जंतु सभी इस भीषण गर्मी से परेशान थे। परेशान मन्नू चींटी भी थी पर वह सुबह से लगातार काम कर रही थी। इस भयंकर गर्मी के बाद निश्चित रूप से वर्षा होने वाली थी। मन्नू के बिल का सारा राशन समाप्त हो चुका था। अचानक ही एक सप्ताह के लिए उनके यहाँ खूब-सी मेहमान चींटियाँ जो आ गई थीं। उनका सत्कार तो करना ही था। मेहमानों के आते ही सारी चींटियाँ राशन इकट्ठा करने के लिए जुट पड़ी थीं। यही कारण था, गर्मी में उनके सारा दिन काम करने का।

एक दिन मन्नू कार्य करते-करते अचानक बेहोश हो गई। न जाने वह कितनी देर तक ऐसे ही पड़ी रही। हो सकता है उसे मरी समझ कर कोई खा ही जाता, पर सहसा ही एक मधुक्खी की निगाह उस पर पड़ी। उसने देखा कि साँस चल रही है। मधुमक्खी पलभर में समझ गई कि गर्मी के कारण चींटी बेहोश हो गई है। वह सुबह से ही उसे लगातार काम करते हुए देख रही थी।

मधुमक्खी थी बड़ी दयालु। वह झट से गई और अपनी सूँड़ में पानी भर लाई। चींटी के मुँह में वह बार-बार पानी डालने लगी। थोड़ी-सी देर में मन्नू को होश आ गया। आँखें खुलीं तो उसने देखा कि उसके सिरहाने एक मधुमक्खी बैठी है, वही पानी पिला रही है। कृतज्ञता से मन्नू की आँखों में आँसू भर आए। मधुमक्खी का हाथ, अपने हाथों में पकड़ कर वह बोली—'बहिन तुमने मुझ अपरिचित की सहायता की है, प्राणों की रक्षा की है, मैं हृदय से तुम्हारी कृतज्ञ हूँ।'

'धत् पगली ! हँसते हुए मधुमक्खी कहने लगी—दुःखियों की सेवा-सहायता तो सभी को करनी चाहिए। उसमें परिचय-अपरिचय का भेद कैसा ? जो दीन-दुःखी, असहाय को सामने देखकर भी उसकी

सहायता करने से झिझकता है, पहले परिचय-अपरिचय के रिश्ते ढूँढ़ता है, वह नीच है, दुष्ट है।'

मधुमक्खी के ऊँचे विचार सुनकर चींटी गद्‌गद् हो गई। वह कहने लगी—बहिन, सदा ही तुम्हारे यह सद्विचार बने रहें। तुम ऐसे ही सदैव पीड़ितों की सहायता करती रहो।'

'अभी तुम थकी हुई हो, ज्यादा मत बोलो' ऐसा कहकर मधुमक्खी ने चींटी को चुप कर दिया। फिर वह थोड़ा-सा शहद उसे देती हुई बोली—'लो झपट इसे खा लो, जल्दी ही ठीक हो जाओगी।'

मन्नू चींटी प्रसन्नता और कृतज्ञता से भर उठी। उसने धीरे-धीरे शहद खाया। वह बड़ा ही मीठा और स्वादिष्ट था। उसे खाकर मन्नू जल्दी ही स्वस्थ हो उठी। फिर मन में कुछ सोचते हुए वह मधुमक्खी से बोली—'बहिन, क्या आज से तुम मेरी मित्र बनोगी ?'

मधुमक्खी स्वयं ही मन्नू से, उसके श्रम से बड़ी प्रभावित थी और उसे मित्र बनाना चाहती थी। वह अच्छी तरह जानती थी कि हम जैसे व्यक्तियों के साथ रहते हैं, धीरे-धीरे वैसे ही बनते चले जाते हैं। इसलिए सदा अच्छे व्यक्तियों को ही मित्र बनाना चाहिए। वह हँसते हुए बोली—'बनेंगे क्या, बन ही गए। चलो इसी उपलक्ष्य में तुम्हारी दावत हो जाए। और हाँ, अपना नाम बताना तो भूल ही गई मुझे रानी कहते हैं।'

मन्नू के बहुतेरा 'न न' करने पर भी रानी नाम की वह मधुमक्खी उसे अपने छत्ते पर ले गई। वहाँ अनेक मधुमक्खियों ने उसका स्वागत किया। चलते समय उन्होंने मन्नू को ढेर-सा शहद दिया।

अब मन्नू और रानी नित्यप्रति मिलती थीं। उनकी मित्रता धीरे-धीरे घनिष्ठ होती चली जा रही थी। वे निस्संकोच एक-दूसरे से अपने सुख-दुःख की बातें कहतीं, एक-दूसरे से सलाह लेतीं। सच्चा मित्र सही सलाह देकर मित्र का उपहार ही करता है।

रानी प्रायः ही मन्नू को रोज शहद लाकर देती—ताजा और स्वादिष्ट शहद। मन्नू को रोज-रोज शहद लेते शर्म आती। पर रानी

'तुम्हें मेरी कसम है बहिन, यह तो तुम्हें लेना ही होगा।' कहकर हर बार उसे शहद खिला ही देती। एक दिन मन्नू ने कहा—'तुम तो रोज-रोज ही मुझे शहद खिलाती हो पर मैं तुम्हें कुछ भी नहीं दे पाती! क्या यह अच्छा लगता है ?

रानी गंभीर होते हुए बोली—'देखो बहिन, मित्रता व्यापार नहीं होती। तुम मुझे सच्चे हृदय से प्यार करती हो, वही मेरे जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। घबराती क्यों हो, कभी तो समय आएगा ही जब तुम्हें मेरे लिए कुछ करने का अवसर मिलेगा। इन छोटी-मोटी चीजों के लेन-देन में भला क्या रखा है।

और जल्दी ही वह अवसर भी आ गया। एक दिन संध्या के झुटपुटे में थकी हुई मन्नू, पेड़ के नीचे विश्राम कर रही थी। उसी पेड़ पर रानी का छत्ता था। कुछ ही देर बाद मन्नू ने देखा कि वहाँ दो आदमी आ खड़े हुए। उनके हाथ में डंडे थे। वे बार-बार रानी के छत्ते की ओर इशारा करके कुछ कह रहे थे। मन्नू पल भर में ही सारी बात समझ गई। वह वहाँ से तुरंत तेजी से दौड़ी और अपनी पूरी सेना बुला लाई। तब तक वे आदमी पेड़ पर चढ़ चुके थे और छत्ता तोड़ने ही वाले थे। सैकड़ों चींटियाँ उन आदमियों के शरीर पर चढ़-चढ़कर जोरों से काटने लगीं। वे उछल-कूद करके तंग आ गए पर चींटियाँ थीं कि उनके शरीर पर यहाँ-वहाँ लगातार चढ़े ही चली जा रही थीं। 'अरे बाप रे, चींटियों के समुंदर में यहाँ-कहाँ आ फँसे हम ! कहकर वे दोनों आदमी अपना-अपना शरीर झाड़ते हुए वहाँ से कूद पड़े।

आदमियों की चीख-पुकार से तब तक रानी और दूसरी मधुमक्खियाँ भी जग गईं थीं। वे सभी की सभी उन आदमियों पर टूट पड़ी। मन्नू ने उन्हें सारी बात बता दी थी। मधुमक्खियों ने उन मनुष्यों को खूब काटा और दूर तक पीछा किया, जिससे वे वहाँ दुबारा आने की बात भी न सोच सकें।

संकट की स्थिति दूर हो जाने पर रानी ने मन्नू को गले लगा लिया। फिर चैन से बैठकर उसने मन्नू से सारी बातें पता कीं। मन्नू

और उसकी सहेलियों ने अपने प्राण संकट में डालकर भी मधुमक्खियों की रक्षा की थी। रानी और दूसरी मधुमक्खियों ने उनका बहुत-बहुत आभार माना। फिर रानी ने सभी चींटियों को शहद की जोरदार दावत खिलाई। रानी हँसकर मन्नू से पूछने लगी—'कहो, अब तो तुम्हें हमारे लिए जी भरकर कुछ करने का अवसर मिल गया न ! तुम तो रोज-रोज इसी चिंता से दुबली हुई जाती थीं।'

रानी की इसी बात पर सभी चींटियाँ और मधुमक्खियाँ भी हँस पड़ीं। एक बूढ़ी मधुमक्खी कहने लगी—'बेटी, सच्चे मित्र से सहायता माँगनी नहीं पड़ती। वह तो सहायता के अवसर ढूँढ़ता रहता है और बिना कहे ही मित्र की सहायता करता है।'

मधुमक्खियों की रानी उसकी बात का समर्थन करते हुए बोली—हाँ काकी, ठीक ही कहती हो तुम। इसके विपरीत दिखावटी मित्रता वाला झूठा मित्र तो सहायता का अवसर देखकर मुँह छिपा लेता है। मित्र की विपत्ति की बात जानकर भी वह ऐसे दीखता है जैसे उसे कुछ पता ही नहीं है।'

'ओह, संकट की घड़ी में ही तो हम अपने मित्र, परिचित और संबंधियों की परख कर पाते हैं, एक मधुमक्खी गंभीरता पूर्वक बोली।

रानी मधुमक्खी कहने लगी—'त्याग और बलिदान ही प्रेम की कसौटी है। हमारे स्नेहीजन हमें कितना चाहते हैं इसका पता इस बात से लगाया जा सकता है कि वे हमारे लिए कितना कष्ट सहने को, कितना त्याग करने को तैयार रहते हैं। मन्नू बहिन, हम सब धन्य हैं जो तुम्हारा और तुम्हारे माध्यम से तुम्हारी सभी बहिनों का सच्चा स्नेह पा सके हैं।'

रानी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि सारी मधुमक्खियों ने सिर हिला-हिलाकर, जोरों से पंख फड़-फड़ाकर उसकी बात का समर्थन किया।

विनय से सिर झुकाकर मन्नू बोली—'ओह, यह तो हमारा कर्त्तव्य था। क्या हम आपके लिए इतना भी नहीं करते ?'

रानी कहने लगी–'संकट की घड़ी ने हमारी मित्रता को और अधिक निखार दिया है।'

फिर से एक बार सभी मधुमक्खियों ने कृतज्ञता व्यक्त की और मन्नू तथा उसकी सहेलियों की प्रशंसा करते हुए वे अपने छत्ते की ओर बढ़ चलीं।



यात्रा

गंगोत्री भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। हिमालय पर्वत से उतरकर गंगा की धारा जहाँ समतल मैदान में आती है वह स्थान ही गंगोत्री है। प्रकृति की सुदंरता को देखने का यह बड़ा ही सुदंर स्थान है।

मनीष और प्रशांत ने भी इसी बार गर्मियों में गंगोत्री जाने का विचार किया। वे दोनों घनिष्ठ मित्र थे। उन्होंने सोचा कि इसी बहाने प्रकृति की सुंदरता को बहुत पास से देखने का अवसर मिलेगा और एक तीर्थ की यात्रा भी हो जाएगी। वे दोनों ऋषिकेश से उत्तरकाशी बस से पहुँचे। वहाँ से उन्होंने गंगोत्री तक जाने के लिए दूसरी बस ली। उन्हें तो मालूम हुआ था कि गंगोत्री जाने के लिए बस से उतरकर केवल दो किलोमीटर चलना पड़ेगा। संयोग की बात कि बीच रास्ते में ही बड़ी जोर का आँधी-तूफान आया जिससे बस का रास्ता बंद हो गया। बस ने उनको गंगोत्री से लगभग तीस किलोमीटर दूर एक गाँव के पास छोड़ दिया। यहाँ से गंगोत्री तक उन्हें पैदल ही जाना था।

यह सब देख-सुनकर प्रशांत एकदम हड़बड़ा गया। वह मनीष से कहने लगा—'ओह, हम इतनी दूर पहाड़ी रास्ते पर पैदल कैसे चढ़ पाएँगे भाई, आगे जाने का तो मेरा वश नहीं। चलो हम आस-पास के स्थान देख लें और वापिस चले चलें।

मनीष यह सुनकर ठहाका लगाकर हँस पड़ा और बोला—'वाह, क्या खूब बात कही। अरे ऐसी निराशा भरी कायरता की बातें शोभा नहीं देतीं। हम धीरे-धीरे आराम से चलेंगे। जब यहाँ तक आए ही हैं तो फिर गंगोत्री के दर्शन न करके लौटना भी भला क्या बुद्धिमानी है ? अच्छे व्यक्ति जिस कार्य की सोच लेते हैं, उसे पूरा करके ही रहते हैं।'

मनीष की बात सुनकर प्रशांत कुछ चिढ़-सा गया और बोला—'हम दोनों साथ-साथ आए हैं। तुम्हें मित्र का भी आखिर कुछ ध्यान रखना चाहिए।'

मनीष उसी सहज मुस्कान के साथ बोला—'भाई मुझे तुम्हारा पूरा-पूरा ध्यान है। जरूरत होगी तो मैं तुम्हें पीठ पर भी ले चलूँगा। रास्ते में हर प्रकार से तुम्हारी सेवा करूँगा। इस सबके लिए मैं पूरी तरह से तैयार हूँ। तुम्हें तो बस प्रसन्नतापूर्वक चलना होगा। चलते-चलते जहाँ तुम रुक जाओगे, वहीं मैं भी रुक जाऊँगा। थक जाने पर तुम्हारे पैर भी दबा दिया करूँगा।'

प्रशांत ने देखा कि मनीष किसी भी प्रकार वापिस लौटने के लिए तैयार नहीं है। उसने यह भी समझ लिया कि मना करने पर वह अकेला ही आगे बढ़ जाएगा। अतएव बेमन से प्रशांत आगे बढ़ने के लिए तैयार हुआ।

पहाड़ी पगडंडी पर दोनों बढ़ चले। उनके आगे और भी अनेक यात्री चले जा रहे थे। वे दोनों तो वाद-विवाद में ही उलझे रहे थे जब कि दूसरे काफी आगे बढ़ गए थे।

रास्ते में प्रशांत ने देखा कि मनीष उससे सदैव आगे रहता है। बड़े ही उत्साह से वह कठिन रास्ता भी पार कर लेता है और हाथ पकड़कर उसे भी पार करा देता है। वह पहाड़ों पर पहली बार आया था पर ऐसे चल रहा था जैसे पहाड़ी रास्ते उसके जाने-पहचाने हैं। यह देखकर प्रशांत से न रहा गया और वह पूछ बैठा—'मनीष, तुम यहाँ पहली बार आए हो, पर तुम इतनी आसानी से पहाड़ी रास्ते पर कैसे चल लेते हो ? कैसे तुम दूसरों को भी रास्ता बता देते हो ? रास्ते में तुम्हारे मुख पर कहीं भी थकान के चिह्न तक दिखाई नहीं देते। तुम तो मुझसे भी दुबले-पतले और छोटे हो। तुम्हें तो मुझसे भी पहले थकना चाहिए।

मनीष कहने लगा—'दोस्त' यों शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है। पर शरीर को संचालित करने वाला मन होता है। मन का उत्साह ही शरीर को आगे बढ़ाता है। आशावादी दृष्टिकोण ही जीवन को

सफल बनाता है। हम जैसा अपना दृष्टिकोण बना लेते हैं, वैसी ही परिस्थितियाँ भी बन जाया करती हैं। अतएव हर स्थिति में हम प्रसन्न रहें, हर काम में सफल होने का उत्साह रखें—फिर देखें कि कौन-सी परिस्थिति हमें खिन्न बनाती हैं, कौन-सी से हमारा काम अधूरा रह जाता है।'

मनीष की बातें सुनकर प्रशांत का उत्साह भी बढ़ गया। वह भी अब प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़ने लगा। उसने पाया कि उसकी गति में भी अंतर आ गया। पहले की अपेक्षा वह जल्दी से रास्ता पार कर लेता है। मन में प्रसन्नता बने रहने से थकान भी नहीं लगती।

रास्ते के सुंदर दृश्यों का आनंद लेते हुए घूमते-घामते वे चार दिन में गंगोत्री पहुँच गए। वहाँ का दृश्य देखकर वे ठगे से रह गए। लगभग २० मीटर की ऊँचाई से छ-सात मीटर चौड़ी गंगा की धारा गिर रही थी। चाँदी से साफ चमकीले जल से ऊँची-ऊँची लहरें उठ रही थीं। जल पर सूरज की किरणें पड़कर उसे सतरंगी इंद्रधनुष-सा बना रही थीं।

'ओह, तुम्हारे ही कारण मैं यह दुर्लभ दृश्य देख सका हूँ' कैमरे में उस दृश्य को अंकित करते हुए, भावविह्वल होता हुआ प्रशांत कहने लगा।

मनीष मुस्करा उठा और बोला—मैं तो पहले ही जानता था कि तुम सामने खड़ा ऊँचा पहाड़ देखकर व्यर्थ ही डर रहे हो। भाई, कोई भी कार्य असंभव नहीं हुआ करता। धैर्य और निरंतर तत्परता से हर काम सरल बन जाता है। कोई भी काम तभी तक कठिन लगता है जब तक कि हम उसे प्रारंभ नहीं करते।

'सो तो देख ही रहा हूँ, प्रशांत बोला।

मनीष कहने लगा—देखो यहाँ आकर अब तुम्हें इतना सबक तो ले ही लेना चाहिए कि जीवन में निराशा भरी नहीं आशा और उत्साह से ही भरी बातें सोचोगे। किसी भी काम को करने से पहले—'यह नहीं हो सकता, ऐसा नहीं कहोगे—इससे हमारी शक्ति क्षीण होती है। मिलने वाली सफलता दूर हटती चली जाती है।

'ठीक ही कहते हो बंधु ! आज मैं यहाँ यही संकल्प लेता हूँ। सफल और सुखी जीवन के लिए यह आवश्यक है। प्रशांत ने सहमति में सिर हिलाते हुए कहा।

फिर दोनों मित्र लौट पड़े। अबकी बार उन्हें कुछ ही मील चलना पड़ा। रास्ता बन चुका था अतएव जल्दी ही उन्हें बस मिल गई। वे बस में बैठकर ठीक प्रकार से अपने घर पहुँच गए।

गंगोत्री की यात्रा ने प्रशांत का न केवल शरीर और मन ही स्वस्थ बना दिया था। अपितु जीवन की परिस्थितियों के प्रति उसका दृष्टिकोण भी आशावादी बना दिया था। प्रशांत इसके लिए अभी भी मनीष का बड़ा ही आभारी है।



स्वर्ग का सुख

अभयारण्य में चंपा नाम की एक बंदरिया रहा करती थी। उसे बच्चों से बड़ा प्यार था, पर दुःख की बात थी उसके अपना कोई बच्चा न था इस बात से रात-दिन खिन्न रहा करती थी। तब उसके पति ने उसे समझाया 'देखो चंपा, यों मन ही मन घुलने से कोई फायदा नहीं, उल्टे तुम्हारा स्वास्थ्य और नष्ट हो जाएगा। तुम औरों के बच्चों को प्यार किया करो, उनकी सेवा किया करो ! हो सकता है भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें भी बच्चा दे दें।

चंपा को पति की बात अच्छी लगी। अब वह दूसरी बंदरिया के बच्चों की सेवा-सहायता करने लगी। वह उन्हें तरह-तरह के खेल खिलाती, अच्छी बातें सिखाती और खाने की चीजें देती। जल्दी ही पास-पड़ौस के सारे बच्चे उससे खूब घुल-मिल गए। वे 'मौसीजी-मौसीजी' कहकर उसके पीछे आगे-पीछे घूमते रहते।

संयोग की बात कि एक वर्ष बाद चंपा के अपना एक बच्चा भी हो गया, वह बड़ी प्रसन्न हुई। 'मैं बेटे को गुणवान बनाऊँगी, परिश्रमी बनाऊँगी, बहुत अच्छा बनाऊँगी' उसके जन्म के समय चंपा ने मन ही मन सोचा। चंपा ने अपने बच्चे का बड़े ध्यान से लालन-पालन किया। वह उसकी हर सुख-सुविधा का ध्यान रखती। कुछ बड़े होने पर चंपा ने उसे शिक्षा देना भी प्रांरभ कर दिया। कुछ ही वर्षों में उसका बेटा किशू बड़ा ही गुणवान् और ज्ञानवान् बन गया। जो उसे देखता उससे बातें करता, उसके साथ रहता, उसका जी प्रसन्न हो जाता। वह बड़ा ही विनम्र-मीठा बोलने वाला, दूसरों की सहायता करने वाला और सभी का सम्मान करने वाला था, यही वे गुण हैं जिनके कारण दूसरे हमें आदर और स्नेह दिया करते हैं।

किशू जब युवा हुआ तो अनेक बंदर यह चाहने लगे कि उनकी बेटी का विवाह उससे हो जाए। वे उसके गुणी स्वभाव से

परिचित थे और अच्छी तरह समझते थे कि उनकी बेटी को यह सदैव सुखी रखेगा। धन-संपत्ति तो नष्ट हो सकती है, पर गुणों की सपत्ति कभी नष्ट नहीं हुआ करती।

किशू का विवाह काली नामकी एक बंदरिया के साथ हो गया। किशू जितना गुणी था, विनम्र था काली उतनी ही झगड़ालू और क्लेश करने वाली । वह छोटी-छोटी बात पर लड़ाई करती। किशू की बूढ़ी माता उसे फूटीं आँखों भी न सुहाती। बात-बात में किशू से वह उनकी बुराई किया करती। इस बात पर जब किशू उसे डाँटता तो वह फफक-फफक कर रोने लगती। ऐसे जीवन से किशू बड़ा ही दुःखी हो गया। कहाँ नरक में आ फँसा हूँ' मन ही मन वह सोचा करता। अब उसकी समझ में यह बात अच्छी तरह से आ गई कि बुजुर्ग क्यों इस बात को कहा करते हैं कि गृहिणी से ही घर बनता है अतएव वधू के चुनाव में गुणों को प्रमुख स्थान देना चाहिए।

हम जैसे व्यक्ति के साथ रहते हैं उसके आचार-व्यवहार का गुणों का, स्वभाव का सूक्ष्म प्रभाव निःसंदेह हम पर पड़ता है। किशू भी अनजाने में धीरे-धीरे काली से प्रभावित हो रहा था। काली के भड़काने से एक दिन वह अपनी माँ से लड़ पड़ा। काली तो पूरी महाकाली थी। उसने किशू को माँ के विरुद्ध और भरा। उसी रात वे दोनों चंपा को अकेली छोड़कर वहाँ से चल पड़े। रात भर और दिनभर वे चलते रहे, और दूर एक जंगल में जाकर उन्होंने डेरा डाला।

वहाँ किशू और काली ने अपनी सुख-सुविधा की सारी सामग्री जुटा ली। किशू को जब काली के साथ अकेले रहने का अवसर मिला तब वह समझा कि उसका स्वभाव कितना उग्र है।

'ओह' माँ की नहीं सारी गलती इसी की है, यह बात भी उसकी समझ में अच्छी तरह से आ गई।

किशू जब-तब बैठकर अपनी माँ की याद करता। जब भी वह उसके विषय में सोचता उसका दिल भर आता। बचपन से लेकर बड़े होने तक की सारी घटनाएँ एक-एक करके उसकी आँखों के आगे

घूम जातीं। माँ का स्नेह, उसका त्याग सभी कुछ उसे याद आने लगते, 'ओह, ऐसी ममतामयी माँ को अकारण छोड़कर मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है। बुढ़ापे में तो मुझे उनकी सेवा करनी चाहिए थी, न कि यों उन्हें छोड़ देना चाहिए था। वह मन ही मन सोचता और अपने आपको धिक्कारता। किशू ने अनेकों बार काली से माँ के पास लौट चलने का आग्रह किया पर वह किसी भी प्रकार तैयार न हुई।

कुछ समय बाद काली के एक बच्चा भी हो गया। किशू ने बच्चे के प्रति अपने मन में उमड़ती भावनाओं से यह अनुभव कर लिया कि माता-पिता बच्चों को कितना प्यार करते हैं। मेरी माँ ने मुझसे भी न जाने कितनी आशाएँ की होंगी, वह मन ही मन सोचा करता।

एक दिन बहुत बड़ी दुर्घटना घट गई। किशू और काली पास-पास बैठे थे। उनके बीच में बच्चा लेटा हुआ था। तभी अचानक पीछे से एक भेड़िया आया और दबे पैरों आकर बच्चे को ले भागा। किशू और काली ने जब मुड़कर देखा तो भेड़िया भागकर दूर जा चुका था। वे हा-हाकार करते हुए उसके पीछे दौड़े, भेड़िया और भी तेज भागा और कुछ ही देर में उड़नछू हो गया। किशू और काली दोनों बहुत दूर तक भागे परंतु उनके हाथ कुछ न लगा। काली तो बच्चे के शोक में बाबली-सी हो गई। वह छाती पीट-पीट कर करुण क्रंदन कर रही थी—हाय मेरे बेटे, हाय मेरे लाल। किशू बड़ी कठिनाई से उसे समझा कर वापिस लाया।

अब काली का खाना-पीना सभी छूट गया। वह चौबीसों घंटे बैठी अपने बच्चे को याद करती रहती थी। अपने बेटे को खोकर किसी माँ को कैसा लगता है—यह अब उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था। वह किशू से कहती—'मैंने तुम्हारी माँ से अलग किया है न। भगवान ने उसी का दंड तो मुझे दिया है।'

उधर अब चंपा का हाल भी सुनिए। सुबह उठकर जब उसने बेटे-बहू को पेड़ पर नहीं पाया तो वह सोचने लगी कि प्रातः घूमने चले गए होंगे, घूम-फिरकर नाश्ता करके थोड़ी देर में लौट आएँगे।

वह भूखी प्यासी बैठी उनकी प्रतीक्षा करती रही, पर रात तक भी जब बहू-बेटे नहीं लौटे तो वह बड़ी चिंतित हुई। बेचारी अपने अशक्त शरीर से खाँसती-लड़खड़ाती आस-पास की सारी जगह देख आई, पर किशू और काली वहाँ होते तो मिलते।

दूसरे दिन चंपा फिर प्रातः से ही अपने अभियान पर निकली। वह जंगल का चप्पा-चप्पा छान आई पर बहू-बेटे का कहीं पता न लगा। हाँ, भाऊजी उल्लू ने यह जरूर बताया कि उसके बहू-बेटे को इस जंगल की सीमा को पारकर आगे बढ़ते देखा था।

भाऊजी की बात सुनकर चंपा का हृदय रो उठा। वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी। 'हाँ बेटा, कौन-सा अपराध किया था मैंने जो तुम मुझे छोड़कर चले गए वह हड़बड़ाई और फिर अचेत हो गई। पास से गुजरने वाली कांता हथिनी ने उसके मुँह पर पानी के छींटे लगाए, जैसे-तैसे उसे होश आया। दुःख को अपने हृदय में छिपाए थके-हारे कदमों से जैसे-तैसे वह घर की ओर लौटी।

चंपा अब समझ गई थी कि उसका बेटा-जान-बूझकर उसे छोड़ कर गया है। उसकी निष्ठुरता ने चंपा के हृदय पर गहरा आघात पहुँचाया था। सारा संसार उसे नीरस जान पड़ा। किसी काम में उसका मन न लगता था। घर तो मानो उसे काटने को दौड़ता था। वह सुबह होते ही घर से निकल पड़ती और यों ही सारे जंगल में इधर-उधर घूमती-भटकती। रात होने पर ही घर लौटती और चुपचाप सो जाती।

एक दिन चंपा यों ही घूमती हुई बहुत दूर भेड़िये की माँद के पास निकल गई, वहाँ उसने अद्‌भुत दृश्य देखा और चौंक उठी। भेड़िए के बच्चों के पास बंदर का भी एक बच्चा बैठा था। चंपा ने आँखें फाड़-फाड़कर देखा। हाँ वह बंदर का ही बच्चा था। यह तो हमारी जाति का बच्चा है। यह तो हमारी जाति का बच्चा है। भेड़िया कहीं इसे खा न जाए, वह बुदबुदाई।' मुझे इस नन्हें बच्चे की रक्षा करनी ही चाहिए' वह मन ही मन बोली। फिर वह अपनी जान को जोखिम में डालकर चुपके से बंदर का बच्चा उठा लाई और पेड़ पर

चढ़ गयी। भेड़िया ने देखा तो वह आग बबूला हो उठा। उसने चंपा को बहुत धमकाया, बहुत लालच दिया पर वह बच्चा वापिस करने के लिए टस से मस न हुई। हारकर भेड़िया को ही वापिस जाना पड़ा।

भेड़िया के चले जाने पर चंपा भी एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग लगाती हुई जंगल पार करने लगी। उसे डर था कि भेड़िया कहीं पास ही न छिपा हो और कहीं फिर आकर बच्चा न झपट ले, इसलिए वह ऐसा कर रही थी।

पेड़-पेड़ पर से जाने के कारण चंपा रास्ता भटक गई और दूसरे जंगल में जा पहुँची। चलते-चलते जब वह थक गई और साँझ का झुटपुटा भी हो गया तो वह बच्चे को लेकर एक पेड़ पर बैठ गई। उस पेड़ की एक ऊँची डाली पर किशू और काली बैठे हुए थे। चंपा ने उन्हें नहीं देखा था। चंपा ने आराम से बैठने पर बच्चा अपनी छाती से अलग करके डाल पर बैठाया। बच्चे को जोरों की भूख लगी थी, वह चिचिआने लगा। आवाज सुनकर काली की निगाह सहसा नीचे गई। 'मेरा बच्चा-मेरा नन्हा' कहकर वह तेजी से कूद पड़ी और बच्चे को कसकर छाती से लगा लिया। अब तक किशू का ध्यान भी बट चुका था। उसने माँ को नीचे बैठे देखा तो वह भी 'अम्मा-अम्मा' कहकर उससे लिपट गया। किशू, काली और चंपा तीनों की आँखों से आँसू बह रहे थे। उन्होंने एक दूसरे को अपनी-अपनी बात सुनाई।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही चंपा घर जाने को तैयार हो गई, जब वह चलने लगी तो किशू ने उसका रास्ता रोक लिया और कहने लगा—'अकेली कहाँ जाओगी अम्मा, हम भी तो तुम्हारे साथ ही चलेंगे।'

काली चंपा के पैरों पर गिर पड़ी और कहने लगी—'माँ जी, मुझे क्षमा कर दीजिए। मैंने बुरे विचारों से परिवार के टुकड़े कर दिए। मिल-जुलकर रहने के, बड़ों की सेवा करने के महत्त्व को मैं तब नहीं समझती थी, पर अब मुझे यह समझ आ गई कि माँ बच्चे के लिए कितना त्याग करती है, कितना कष्ट सहती है और उससे कितनी

आशायें रखती है। बच्चे का भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वह बड़ा होकर माता-पिता की सेवा करे। जो ऐसा नहीं करता उल्टे अपने माता-पिता से बुरा बोलता है, व्यवहार करता है उसे धिक्कार है।'

'हाँ माँ, स्नेह और त्याग से भरा परिवार ही स्वर्ग का सुख देता है, किशू भी गंभीर होते हुए बोला।

चंपा ने काली को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। प्रसन्नता से उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। भगवान् तुम्हारे विचार ऐसे ही बनाए रखे काली और किशू के सिर पर हाथ फिराती हुई वह बोली।

इसके बाद चंपा, किशू, काली और नन्हा सभी अपने पुराने घर की ओर लौट चले। उसके हृदय में मिल-जुलकर रहने, प्यार और सहकार भरा स्वर्गीय परिवार बसाने की भावनाएँ हिलोरें ले रही थीं।



भाइयों का स्नेह

अभयारण्य में अनेक जीव-जंतु रहा करते थे। मुनमुन और चुनचुन खरगोश भी उन्हीं में से थे। वे दोनों सगे भाई थे। दोनों ही एक दूसरे को बहुत प्यार करते थे, पर एक बार कुछ जानवरों ने दोनों को भड़का दिया। वे दोनों आपस में लड़ पड़े और अलग-अलग रहने लगे। उनकी लड़ाई देखकर कुछ दुष्ट जानवरों को बड़ा अच्छा लगा। वे मुनमुन से चुनचुन की बुराई करते, झूठी-झूठी बातें एक-दूसरे के विषय में कहते, पर चुनचुन और मुनमुन सदा आँखें बंद करके दूसरों की बातों पर विश्वास कर लेने वाले मूर्ख भी न थे। अब वे सचाई को जानने लगे थे और एक दूसरे को समझकर चलने की कोशिश करने लगे थे। कुछ ही दिनों में दोनों ने यह बात समझ ली कि दूसरों के बहकावे में आकर उन्होंने गलत किया है। अब दोनों को बड़ा ही पछतावा होता कि हाय न जाने किस कुघड़ी में दूसरों की बातों में आकर उन्होंने अपना घर बिगाड़ लिया।

गलती करना उतना बुरा नहीं है जितना कि गलती को समझकर भी उसे सुधारने की कोशिश न करना। दोनों भाई सोचने लगे कि गलती को कैसे दूर किया जाए। जहाँ चाह होती है वहाँ राह निकल ही आती है, जल्दी ही उन्हें रास्ता मिल गया।

मुनमुन खरगोश कई दिनों से देख रहा था कि चुनचुन दुबला होता जा रहा है। "बेचारा छोटा ही तो है, अभी, पता नहीं ठीक से खाना ढूँढ़कर खा पाता है या नहीं। मैंने उसे अलग करके बुरा किया।" मुनमुन ने सोचा।

उधर चुनचुन भी कई दिनों से देख रहा था कि बड़े भइया बड़े ही उदास और थके हुए रहते हैं। उसने मन ही मन सोचा कि भइया पर बहुत अधिक काम आ गया है। पहले तो मैं घर का काम कर लिया करता था और भइया खाना ढूँढ़कर लाते थे। अब वे

बाहर का भी काम करते थे और घर का भी। थकेंगे नहीं तो और क्या होगा ? वे दुबले न होंगे तो क्या होगा ? हाय धिक्कार है मुझे जो दूसरों के कहने में आकर इतना स्नेह करने वाले शुभ चिंतक भाई को छोड़ दिया। अरे, वे बड़े हैं, गुस्से में कुछ सुना दिया तो क्यों मैंने इतना बुरा माना ? मैं उनके पैरों पर गिर जाता, क्या तब भी मुझे घर से निकाल देते ?

बस फिर क्या था। दूसरे ही दिन चुनचुन सुबह से ही यह देखने लगा कि भइया कब काम पर जाएँ। मुनमुन के जाते ही वह तुरंत उसके घर में घुस गया। सारा सामान इधर-उधर बिखरा पड़ा था। खाने-पीने की चीजें यों ही पड़ी थीं। बहुत दिनों से किसी ने उनसे हाथ ही न लगाया था, पता नहीं भइया ठीक से खाते-पीते भी हैं या नहीं। चुनचुन ने मन ही मन सोचा फिर वह सफाई के काम में जुट गया। कुछ ही समय में घर का कोना-कोना चमकने लगा। मन लगाकर जो काम किया जाता है, उसका प्रभाव ही निराला होता है।

अपने घर जाकर चुनचुन ने दो-चार गाजरें खाईं और ऊपर से पानी पी लिया। खाने के लिए एक छोटा-सा गाजर का ढेर चुनचुन के पास था, जो अलग होते समय भाई ने दिया था। बहुत भूख लगने पर चुनचुन उसी में से थोड़ी-सी गाजरें निकालकर खा लिया करता था। अकेले-अकेले उसकी न कुछ खाने की इच्छा होती थी और न ही भूख ठीक से लगती थी। सूना-सूना घर काटने को दौड़ता था। यही कारण था कि वह गाजरें अभी तक पड़ी हुई थीं।

उधर उस दिन मुनमुन अपने घर से निकलकर सबसे पहले चुनचुन के यहाँ गया था। जब उसे यह विश्वास हो गया कि घर में कोई नहीं है तो वह चुपके से अंदर घुस गया। उसकी निगाह गाजर के ढेर पर पड़ी। 'ओह ! देखो तो, छोटा कुछ नहीं खाता। सारी गाजरें ज्यों की त्यों पड़ी हैं।' मुनमुन बड़बड़ाया। फिर उसने पोटली खोलकर साथ लाई हुई गाजरें उस ढेर में मिला दीं।

रास्ते भर मुनमुन सोचता गया कि प्यारे भाई को उसने गुस्से में भर कर अलग कर दिया—यह बहुत ही गलत हुआ। कैसे अ

उसे वह वापिस बुलाए ? जिसे हम सच्चे हृदय से स्नेह करते हैं उसे दुःखी नहीं देख सकते। उसके सुख और संतोष के लिए हम हर संभव उपाय अपनाते हैं।

दिन भर का हारा-थका मुनमुन शाम को घर पहुँचा। घर में घुसते ही वह चौंक पड़ा। सारा घर साफ-सुथरा पड़ा था। और चमाचम चमक रहा था, सहसा ही उसे चुनचुन की याद आ गई। मुनमुन की आँखों में आँसू भर आए। 'जरूर वही आज आया होगा, नहीं तो किसे पड़ी है यह सब काम करने की ? क्यों करने लगा यह ?' मन में मुनमुन ने सोचा।

थका हुआ मुनमुन बिना कुछ खाए-पिए ही लेट गया। आज उसे चुनचुन की बहुत अधिक याद आ रही थी। सहसा ही उसे वह दिन याद आ गए जब चुनचुन और वह मिलकर रहते थे, हँसते-बतियाते थे, मुनमुन के बाहर से लौटकर आते ही चुनचुन खुशी से भर उठता था। वह तुरंत दौड़कर खाने-पीने की चीजें लाता था। बड़े आग्रह के साथ भाई को खिलाता था। फिर चुनचुन बड़े भाई के कभी पैर दबाता तो कभी सिर सहलाता। दोनों भाई मौज-मजे में रहते थे। उनकी यही खुशी तो पड़ौसियों से देखी नहीं गई थी और उनमें फूट डलवा दी थी। यही सोचते-सोचते मुनमुन को नींद आ गई।

दूसरे दिन जब मुनमुन की आँखें खुली तो सूरज काफी चढ़ चुका था वह आँखें मलता हुआ उठ बैठा। फिर वह जल्दी से तैयार होकर बाहर जाने के लिए निकल पड़ा। आज वह चुनचुन को अच्छी लगने वाली ढेर सारी चीजें जल्दी उसके घर पहुँचाना चाहता था।

मुनमुन जब घर से बाहर दूर निकल गया तो उसे सहसा ही याद आया कि आज तो वह टोकरी लाना ही भूल गया है। ढेर सारा सामान फिर चुनचुन के पास कैसे पहुँचाया जा सकता था ? तुरंत वह वापिस घर की ओर चल पड़ा।

द्वार पर जाकर मुनमुन ठिठक गया। दरवाजा खुला पड़ा था 'मेरी अनुपस्थिति में यह कौन घुस आया ? कहीं चुनचुन ही तो नहीं

है ?' ऐसा सोचकर मुनमुन तेजी से अंदर घुसा। उसने देखा कि चुनचुन उसकी ओर पीठ किए तेजी से सफाई में जुटा है। मुनमुन ने पीछे से जाकर उसे कसकर पकड़ लिया। सहसा ही चुनचुन चौंक पड़ा। उसने हड़बड़ाकर गर्दन घुमाई तो देखा कि सामने बड़ा भइया खड़ा है। संकोच से पलभर को चुनचुन की पलकें झुक गईं। फिर वह मुनमुन के गले से लिपटते हुए बोला—'दादा, मुझे माफ कर दो अब मैं कभी गलती नहीं करूँगा, तुम्हारी बात का बुरा नहीं मानूँगा।'

मुनमुन प्यार से उसके सिर पर हाथ फिराते हुए बोला—'छोटे, अब तुम यहाँ से कभी नहीं जाओगे। हम तुम सदैव एक साथ ही रहेंगे। दूसरों के बहकाने में आकर गुस्से में हम दोनों ही गलती कर बैठे थे। आओ अब अपनी गलती सुधार लें।'

उस दिन बहुत दिनों बाद दोनों भाइयों ने भरपेट खाना खाया, घंटों तक वे एक-दूसरे को अपनी-अपनी बातें बताते रहे।

मुनमुन-चुनचुन का प्रेम देखकर जंगल में कुछ जानवरों को बड़ा बुरा लगा। उन्होंने फिर उनमें लड़ाई करवाने की कोशिश की, पर इस बार उन्हें निराश ही होना पड़ा। चेता लोमड़ी, कालू सियार और कक्कू भेड़िया जब भी मोटे-ताजे मुनमुन-चुनचुन को देखते हैं तो होठों पर जीभ फिराकर ही रह जाते हैं। ठीक ही तो है—संगठन से ही सुरक्षा और बल मिलता है। अपने शुभ चिंतकों से, आत्मीयजनों से लड़-झगड़ कर रहने से तो दुर्जनों को लाभ उठाने का अवसर मिल जाता है और हमारी परेशानियाँ ही बढ़ती हैं।



सफल और लोकप्रिय शासक

एक दिन श्वेता सिंहनी अपने बेटे के साथ दंडकारण्य वन में घूमने निकली। उसका बेटा महाराज पीताभ अभी कुछ दिनों पहले ही जंगल का राजा चुना गया था। सभी जानवरों ने मिलकर सर्वसम्मति से उसका चुनाव किया था।

वन में सहसा ही श्वेता के कानों में एक करुणा भरी पुकार पड़ी। उसने चौंककर इधर-उधर ध्यान से देखा। श्वेता ने पाया कि गीदड़ का एक छोटा-सा बच्चा कीचड़ में फँस गया है। वह निकलने की जितनी कोशिश करता है उतना ही फँसता जाता है। वही अपनी सहायता के लिए आवाज लगा रहा है।

गीदड़ की यह स्थिति देखकर सिंहनी दया से भर उठी। वह धीमे से बुड़बुड़ाई—हाय बेचारा बच्चा ! यदि तुरंत इसकी सहायता न की गई तो यह तड़फ-तड़फ कर प्राण ही दे देगा। श्वेता ने पीताभ को, जो घूमते हुए उनसे बहुत आगे निकल गया था, तुरंत जोर से आवाज लगाई। माँ की आवाज सुनकर पीताभ तुरंत ही दहाड़ता हुआ आया और बोला 'क्या हुआ माँ ?'

बचने के लिए हाथ-पैर पटकते हुए गीदड़ की ओर श्वेता ने इशारा किया—'बेटा जाओ, संकट में पड़े प्राणी की सहायता करो।'

यों श्वेता गीदड़ को बचाने स्वयं भी जा सकती थी, पर उसने जान-बूझकर पीताभ को पुकारा था। वह परखना चाहती थी कि कहीं ऊँचा पद पाकर पीताभ को अभिमान तो नहीं हो गया है, सत्ता के मद में भरकर कहीं वह कर्त्तव्य की अवहेलना तो नहीं करता।

माँ की बात सुनते ही पीताभ तुरंत ही उस ओर दौड़ गया। उसने एक ही झटके में गीदड़ को बाहर निकाल दिया, पर इस प्रयास में पीताभ स्वयं कीचड़ से पूरा लिप-पुत गया था।

गीदड़ के बच्चे ने तो शेर की भयंकर गर्जना सुनकर अपनी पीठ पर उसके पंजों का स्पर्श पाकर ही भय से आँखें बंद कर ली थीं। अब तो मेरे बचने का कोई प्रश्न ही नहीं। इधर कीचड़, उधर शेर, ऐसा सोचकर, अपना अंत समय निकट आया जानकर वह मन ही मन भगवान का स्मरण कर रहा था। उसकी यह स्थिति पीताभ से भी छिपी न रह सकी। उसे सूखी जमीन पर रखते ही वह बोला—'डरो मत, आँखें खोलो बच्चे।'

परिचित-सी आवाज सुनकर गीदड़ के बच्चे ने आँखें खोलीं। परंतु पीताभ के कीचड़ में लथपथ होने के कारण वह उसे पहिचान न पाया। सहसा ही उसकी निगाह श्वेता पर गई। वह उसे प्रणाम करते हुए बोला—ओह राजमाता, आप यहाँ ।

श्वेता बोली—'हाँ' यह तुम अपना सौभाग्य समझो कि हम घूमते हुए इधर आ निकले और स्वयं महाराज ने तुम्हें बचा लिया अन्यथा आज तो कीचड़ में फँसकर तुमने प्राण ही दे दिए होते। जाओ आगे ठीक से रहना, सोच-समझकर काम करना जिससे विपत्ति में न पड़ो।'

गीदड़ का बच्चा तुरंत महाराज पीताभ के चरणों में गिर गया और बोला, मेरे प्राणदाता, आपका यह उपकार मैं जीवन भर न भूलूँगा। सचमुच मैंने जैसा आपको सुना था वैसा ही पाया। भगवान आपको लंबी आयु दे, सुख-शांति दे।

ढेरों शुभकामनाएँ देता हुआ गीदड़ का बच्चा चला गया तो श्वेता बोली 'बेटे मुझे आशंका थी कि तुम सहायता के लिए जाओगे या नहीं।'

पीताभ प्यार से अपने पंजे को माँ की पीठ पर रखते हुए बोला—माँ, तुम्हारे आदेश का मैं उल्लंघन कर सकता हूँ—यह तुमने सोच भी कैसे लिया ?

श्वेता हँसते हुए कहने लगी—'मैंने सोचा कि बेटा अब महाराज बन गया है शायद ।

माँ की बात को बीच में ही काटते हुए पीताभ बोला,—'माँ, तुम्हीं ने तो सिखाया है कि कोई भी पद से ऊँचा नहीं हुआ करता, गुणों

से ऊँचा होता है। ऊँचे पद पर बैठे हुए गुणहीन-अत्याचारी शासक के मुँह पर डर के कारण कोई कुछ भी न कहे, पर पीठ पीछे सभी उसकी निंदा करते हैं। उसके पद के हटने पर कोई उसकी ओर घृणा से मुँह फिरा कर भी नहीं देखता। इसलिए ऊँचा पद पाकर अभिमान नहीं करना चाहिए अपितु सद्‌गुणों से ही अपने आपको ऊँचा उठाना चाहिए।

'बेटे, तुम्हारे यही विचार निरंतर बने रहें तो तुम निःसंदेह एक सफल और लोकप्रिय शासक बनोगे–ऐसा कहते हुए श्वेता ने स्नेह से पीताभ को गले लगा लिया।



संकल्प

अभय अपने भाई-बहिनों में सबसे बड़ा था। उसके माता-पिता उसे बड़ा स्नेह करते थे। उनकी इच्छा थी कि उनका बेटा योग्य बने, गुणवान बने—उसे निरंतर अच्छी बातें सिखाते रहते। अभय भी माता-पिता का कहना मानता, उनको प्रसन्न रखने के लिए अच्छे-अच्छे काम करता, अच्छे गुणों को अपनाता, पर अभय के बहुत सारे अच्छे गुण भी उसके एक दुर्गुण से फीके पड़ जाते। वह दुर्गुण था—जरा-जरा सी बात पर गुस्सा करना। अभय की माँ उसे बहुत समझातीं कि वह इतना क्रोध न किया करे। अभय भी कई बार यह कह देता कि अब वह गुस्सा नहीं करेगा, पर समय आने पर वह अपनी बात भूल जाता और फिर अपना आपा खो बैठता। अभय के माता-पिता बहुत से गुणों के कारण जहाँ अपना बेटे पर गर्व करते थे वहीं दूसरी ओर उसकी तुनक मिजाजी और गुस्से के कारण उन्हें कभी-कभी दूसरों के सामने भी अपना सिर झुका लेना पड़ता था।

एक बार अभय का जन्मदिन था। घर मेहमानों से भरा था। अभय को खूब सारे उपहार दिए जा रहे थे। बच्चे गाने सुना रहे थे। बड़ा ही प्रसन्नता भरा वातावरण था। सहसा ही किसी चीज के गिरने की ध्वनि हुई इसके साथ ही सबका ध्यान अभय के थप्पड़ और एक बच्चे के जोर-जोर से रोने की आवाज ने आकर्षित कर लिया। बच्चा अब और जोरों से चीखे जा रहा था, उसके गाल पर अभय की ऊँगलियों के निशान उभर आए थे। मुँह से खून बह रहा था। बच्चे की माँ तुरंत वहाँ दौड़ी गई। अपने बेटे को उसने गोद में उठाया और अभय से बोली—यह छोटा नादान बच्चा है, बेटे, मारने से क्या लाभ ?' फिर वह बच्चे को चुप कराने बाहर चली गई जिससे वातावरण बोझिल न बने।

बच्चे के बहुत जोर से लगी थी। बाहर से भी उसकी जोर-जोर से लगातार चीखने की आवाजें आ रही थीं। सभी मेहमान अभय को बड़ी तिरस्कार भरी दृष्टि से देख रहे थे। वे सोच रहे थे कि इतनी छोटी सी बात पर इतना जोर का गुस्सा करने की आखिर जरूरत भी क्या है ? बात यह थी कि वह छोटा चंचल बच्चा सारे कमरे में दौड़ रहा था। कभी किसी के पास जाता तो कभी किसी के। अभय के पास भी वह दौड़-दौड़कर जा रहा था। इस बार दौड़कर जाने में वह उसके पास रखी उपहारों की मेज से टकरा गया था। अभय को उपहार में मिली शीशे की एक मछली सहसा ही नीचे गिर पड़ी और चूर-चूर हो गई। यह देखकर अभय अपना आपा खो बैठा और पूरी शक्ति से उसने बच्चे के गाल पर तमाचा जड़ दिया था। मेहमानों ने मुँह से तो कुछ न कहा था, पर उनके चेहरे पर अभय के इस काम के प्रति उपेक्षा और तिरस्कार साफ झलक रहा था। इसके बाद वातावरण बोझिल हो गया। अभय की माँ ग्लानि से भर उठीं, पर उन्होंने मेहमानों के सामने उससे कुछ न कहा।

मेहमानों के चले जाने पर अभय की माँ ने उसे समझाते हुए कहा—'बेटा, इतना क्रोध न किया करो। तुम समझते नहीं, आज तुम्हारे गुस्से के कारण मुझे और तुम्हारे पिताजी को कितना लज्जित होना पड़ा है।'

यह सुनते ही अभय तुनककर बोला—'और उस बच्चे ने जो इतना गलत काम किया था, उससे कुछ न बोला गया।'

'डेढ़ साल का नादान बच्चा था, क्या कहती मैं उससे ?' माँ बोली।

अभय तेज आवाज में बोला—'तुम्हें तो बस हर समय, हर काम में मेरी गलती ही दिखलाई देती है। कोई मेरा काम बिगाड़े, यह मैं सह नहीं सकता। उसे मैं मारूँगा ही, कोई मुझे रोक नहीं सकता।'

इसके बाद अभय खाना बीच में ही छोड़कर उठ गया। माँ के बार-बार मनाने और समझाने पर भी वह रूठकर लेटा ही रहा और भूखा ही सो गया।

इसके कुछ समय बाद की बात है। अभय के माता-पिता को अचानक ही गाँव जाना पड़ा। वहाँ अभय की दादी बहुत बीमार हो गई थी। अभय का घर और छोटे भाई-बहिनों का उत्तरदायित्व सौंपकर उसके माता-पिता गाँव चले गए।

अभय कुशल तो था ही। उसने बड़ी होशियारी से छोटे भाई-बहिनों को सँभाल लिया। खाना बनाने से लेकर भाई-बहिनों को नहलाने, घर की सफाई करने तक का सारा काम अभय कर लेता था। भाई-बहिनों का मन लगा रहे, उन्हें माता-पिता की अधिक याद न आए—इसके लिए वह उन्हें भाँति-भाँति के खेल भी खिलाता था।

एक दिन खेलते हुए छोटा भाई अभय को चिढ़ाने लगा। अभय के बार-बार मना करने पर भी वह नहीं माना। गुस्से में आकर उसने अपनी नुकीली पेंसिल जिससे वह ड्राईंग बना रहा था, भाई की ओर फेंककर मारी! पेंसिल तेजी से आकर आँख में लगी। छोटा बच्चा दर्द से बिलबिला उठा, उसके मुँह से चीख निकल गई। अभय अभी उसे और डाँटना ही चाह रहा था कि उसकी दृष्टि बाईं आँख से टपकते खून पर गई, अब तो अभय डर गया। वह पास जाकर भाई को पुचकारने लगा। बड़ी मुश्किल से बहुत देर बाद चुप हुआ, अभय ने उसे अच्छी तरह धमकाया कि माँ को इस विषय में उसने कुछ भी बताया तो उसकी खैर नहीं है।

दूसरे दिन प्रातःकाल माता-पिता लौट आए। पिताजी तो खा-पीकर आफिस चले गए। बाद में माँ का ध्यान छोटे भाई संजय की आँख की ओर गया। 'अरे, क्या हुआ है तेरी आँख में ?' उन्होंने पूछा।

पास बैठा अभय तुरंत बोल पड़ा—'माँ पता नहीं क्यों इसकी आँख अपने आप ही सूज गई है।'

अभय की आँखें देखकर संजय की भी कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ी।

संजय की आँख का दर्द और सूजन लगातार बढ़ते ही गए तो माँ उसे लेकर आँखों के डाक्टर के पास गईं। पूरी तरह आँख को

देखने-जाँचने के बाद डाक्टर बोला—'इसमें तो जरूर कुछ लगा है। क्या लगा है, पूरी बात बताइए जिससे मैं ठीक-ठीक इलाज कर सकूँ।'

'कुछ भी लगा' संजय अभी भी कह रहा था। अभी उसे भाई की मार का डर लगा हुआ था।

'देखो बच्चे, तुम्हारी आँख की पुतली में भी घाव हो चुका है। बस यों समझ लो कि यदि तुम अभी भी सच्ची बात नहीं बताओगे तो तुम्हारी आँख फिर कभी ठीक नहीं होगी। फिर तुम एक आँख से ही देखा करोगे' डाक्टर ने सही बात जानने के लिए संजय को डराते हुए पूछा।

यह सुनकर संजय डर गया और रोते हुए उसने पूरी बात बता दी।

'ओह', तभी तो मैं सोच रहा था कि नुकीली वस्तु के चुभाए बिना इतना गहरा घाव आँख में हो नहीं सकता।' संजय की माँ की ओर देखते हुए डाक्टर बोला।

'डॉक्टर की बात सुनकर माँ तो परेशान ही हो उठीं।' अब मैं क्या करूँ डाक्टर साहब ? कैसे यह ठीक होगा ? घबराकर वह कहने लगीं।

'बच्चे को लेकर तुरंत आप अलीगढ़ चली जाइए और वहाँ के नेत्र चिकित्सालय में दिखलाइए। वहीं इसका इलाज संभव है' डॉक्टर समझाने लगा। उसने वहाँ के डाक्टरों के नाम पत्र भी लिखकर दे दिया।

दूसरे ही दिन संजय को लेकर माता-पिता दोनों अलीगढ़ पहुँच गए। आँख देखकर डाक्टर ने कहा—'आपने आने में देर कर दी है, फिर भी हम प्रयास करेंगे। पुतली में बहुत गहरे घाव हो गए हैं। आपरेशन ही करना पड़ेगा।'

संजय को अस्पताल में भर्ती करा दिया गया था। डेढ़ महीने वह वहाँ रहा। थोड़े-थोड़े दिनों बाद उसकी आँख के तीन आपरेशन

किए गए। आँख की रोशनी तो वापिस आ गई पर, संजय' को हमेशा के लिए चश्मा लगाना पड़ गया।

अभय को तनिक भी उम्मीद न थी कि उसका क्रोध दुष्परिणाम सामने लाएगा। भाई की स्थिति के लिए वह स्वयं को जिम्मेदार समझ रहा था। वह सोच रहा था कि माताजी-पिताजी -उसे खूब डाँटेंगे। डाँटना भी चाहिए, कितनी बड़ी भूल जो की है मैंने' मन ही मन वह कहता।

घर लौटने के बाद भी न तो संजय ने और न ही माता-पिता ने अभय से कुछ कहा। हाँ, माँ ने उससे बोलना जरूर कम कर दिया था। अभय को बड़ी आत्मग्लानि होती। चश्मा लगाकर भी संजय को आँख में कुछ भेंड़ापन-सा लगता था। अभय जब भी उसे देखता मन में यही सोचता 'ओह, मेरे ही कारण मेरे सुंदर भाई की आँख खराब हो गई। मन ही मन वह बड़ा दु:खी रहता, उसने संकल्प किया कि अब कभी भी गुस्सा नहीं करेगा, गुस्से में तोड़-फोड़ और मारपीट नहीं करेगा। जब भी ऐसा घटना घटती, उसे गुस्सा आने को होता तो वह तुरंत वहाँ से हटकर अकेले जा बैठता। अपने आपको वह जोर-जोर से बोलकर समझाता—'तुम्हें गुस्सा नहीं करना है। गुस्से से बहुत हानि होती है। तुम्हें तो अच्छा लड़का बनना है।' गुस्सा कम होने पर वह बाहर आकर फिर सबके साथ इस प्रकार हँसने-बोलने लगता जैसे कुछ हुआ ही न हो। इस प्रकार धीरे-धीरे अभ्यास और लगन से अभय को गुस्सा करने की आदत छूट गई। जिस आदत को हम सच्चे मन से बदलने की प्रतिज्ञा कर लेते हैं, वह निश्चित ही बदल जाती है। अभय अब घर-बाहर सभी का स्नेही पात्र बन गया है। सभी की दृष्टि में वह एक गुणवान और हँसमुख बालक है।



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा